अपनी बात

हमारे साहित्य में ऐसे अनेको कलाकार हैं जिनकी कला-कृतियों का ठीक तरह से मूल्याङ्कन नहीं हो सका। हिन्दी के आलोचको की मूल प्रवृत्ति रही है कि उन्होने उसी कवि के ऊपर अपनी लेखिनी उठाई जिसको विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रम में ले लिया गया। महाकवि घनानद भी इसी तरह के कलाकार हैं। अभी तक उनके काव्य की विशेपताओ को हिंदी के बहुत कम आलोचको के द्वारा प्रकाशित किया गया। स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी का ध्यान उनकी ओर अवश्य आकर्पित हुआ और उन्होने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में इस महान कलाकार की विशेपताओं की ओर सकेत भी किया किन्तु वह पर्याप्त नहीं।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और श्री शभुप्रसाद बहुगुना ने घनानद के विपय में लिखा लेकिन इन दोनो विद्वानो ने भी उनके काव्य पर व्यापक दृष्टि नहीं डाली। इस वर्ष घनानद को आगरा विश्वविद्यालय ने एम०ए० की परीक्षा के पाठ्य-क्रम मे ले लिया है और साथ ही आलोचको का ध्यान भी उनकी ओर आकर्पित हुआ है। मैं भी दुर्भाग्य से उसी समय इस कार्य मे लगा जब कि मुझे यह प्रतीत हो गया कि घनानद भी पाठ्यक्रम मे ले लिये गये हैं। इसलिए मैं अपनी इस मनोवृत्ति के लिए पाठको से क्षमा चाहूँगा। फिर भी मै इस कार्य को इतनी शीघ्र सभवत. नहीं कर पाता यदि परम स्नेही डा० रागेय राघव जी मुझे प्रेरणा नहीं देते। वह इन दिनो घनानद पर एक खण्डकाव्य लिख रहे थे जिसे सुनने का मुझे सौभाग्य मिला और साथ ही मेरे कार्य करने की गति भी बढी। इसलिए में उनका विशेष आभारी हूँ।

मै अपने उन मित्रो का भी आभार स्वीकृत करता हूँ जिन्होने मुझे पुस्तको के जुटाने मे सहायता दी। प्रस्तुत पुस्तक के लिखने मे मुझे निम्नलिखित पुस्तको की सहायता भी कहीं कहीं लेनी पड़ी —

विषय-सूची

हिन्दी साहित्य का इतिहास	(स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)
भाषा और साहित्य	(बाबू श्यामसुन्दरदास)
शृङ्गार-सग्रह	(कविराज सरदार)
रीतिकाव्य की भूमिका	(डा० नगेन्द्र)
घन-आनन्द	(श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
घन-आनद	(शभुप्रसाद बहुगुना)

उपर्युक्त पुस्तको के लेखको के प्रति भी मै अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ क्योंकि वही मेरे पथ-प्रदर्शक हैं।

—राम वाशिष्ठ

महाकवि घनानंद

जीवन वृत्त

भारतीय काव्य प्रणेताओं, साहित्यकारों एवं मनीषियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से ज्ञान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न किया। भावनाओं के असीम सागर मे डुबकी लगाकर उसमें से अमूल्य रत्नों को खोजा जीवन के व्यापक तत्वो की व्याख्या की। किन्तु जहाँ, उनके अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं का प्रश्न है वहाँ वे मौन रहे। यह परम्परा संस्कृत साहित्य से चली आ रही थी। आधुनिक युग में अवश्य इस महत्व को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आवश्यक समझा गया और अब तो आत्म-प्रशंसा को इतना महत्व दिया जा रहा है कि इसमें लेखक और कवि वर्ग अपने अर्थ का भी व्यय करने लगे हैं। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर अपने फोटो को देना आवश्यक समझते हैं, अन्य मित्रों के द्वारा अपने जीवन के महत्व का प्रतिपादन अपने जीवन काल ही में करा लेते हैं। किन्तु हमारे साहित्य की प्राचीन परम्परा में इसको दोष समझा जाता था। आत्मश्लाघा और अपने व्यक्तित्व का विज्ञापन यह पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन महाकवियो ने ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जिसमें उन्होने अपने अहं को भुला दिया किन्तु आज जब हम उसको ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो वह हमें उनकी भूल सी प्रतीत होती है। हम उनके जीवन सम्बन्धी सामग्री को उनकी रचनाओ में बिखरे ऐतिहासिक सत्यो, ताम्रलिपियो, शिलालेखो और अन्य उपकरणों को जुटाकर ही देखने का प्रयत्न करते हैं। कालिदास जैसे महाकवि, तुलसी और सूर जैसे महान् काव्य प्रणेताओ के जीवन-चरित्र को जुटाने मे अनुमान का ही सहारा लेना पडता है। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य पर ही अवलंबित रहना पड़ता है।

हिंदी के वीरगाथाकाल के प्रमुख कवि चन्दवरदाई, भक्तिकाल के जायसी, कबीर, तुलसी, सूर तथा रीतिकालीन कवियो के जीवन की सामग्री को जुटाने

दीन्ह्यो हुकुम नगर मे जेते । अब बचि सायँ जियत नहिं तेते ॥
मारन लगे मलेच्छ प्रचारी । बचे न माथुर भट्टहु भिखारी ॥
घन आनन्द वशीवट पाही । बैठे रहे भावना माहीं ॥
राधा माधव के मधि रासा । सखी रूप छवि पीवन आशा ॥
हाथे लीन्हे रहे सुखारी । तेहि क्षण मे भावना पसारी ॥
सोइ सुखारी कर में लीन्हे । दिन रजनी बिताय सब दीन्हें ॥
सोइ भावना महँ गिरधारी । बीरी दीन्यो पानि पसारी ॥

दोहा—सोउ बीरी मुख मे लियो, लगे चुरावन सोय ।
सोइ बीरी को रागमुख प्रगट लख्यो सबकोय ॥

मुख में भरि आयो जब बीरा । तबहि ध्यान छोड्यो मति धीरा ॥
तेहि अवसर मलेच्छ तहँ आई । मारे खग शीश महँ धाई ॥
उदकि गयो सौ, खग न काट्यो । तब पुनि मारि ताहि अति डाट्यो ॥
तदपि काट्यो नहि उनकी देही । तब घन-आनन्द कृष्ण सनेही ॥
कही पुकारि कृष्ण सो बानी । यह ते कौन रीति अब ठानी ॥
मोकों भूरि भार है देही । यत्न कियो छूट्यो नहि केही ॥
कौन हेतु राखत ससारा । क्यो न बुलावै नन्द कुमारा ॥
यदपि तजन तनु यत्नहु लाग्यो । तदपि न ते उधार अनुराग्यो ॥
कह्यो यमन कहँ पुनि गोहराई । अबकी मारहु शिर कटि जाई ॥
हन्यौ पवन अस कटिगो शीशा । सब यमनन विमान नभ दीसा ॥
घन आनन्द तन कढ़यो न लोहू । सो चरित्र लखि परयो न कोहू ॥
ब्रज में विदित कथा यह सारी । सक्षेपहि इत लिख्यो विचारी ॥
घन आनद के विपुल कवित्ता । अबलो हरत कविन के चित्ता ॥
घन आनद की कथा अनेका । ब्रज मे विदित अहै सविवेका ॥
जाहि सुनन कौ होय हुलासा । करै सो जाय विमल ब्रजबासा ॥

यह घनआनद की कथा, वर्णन कियो समास ।
औरहु भक्तन की कथा, नेसुक करौं प्रकाश ॥"

उपर्युक्त पद्यबद्ध जनश्रुति के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता

सीखने और सगीत का व्यसन लगा और आगे चलकर वह निपुणता दिखाई जिसकी सराहना आज भी भाषा विज्ञ करते हैं। और अभी तक रासधारियो मे इनके पद अद्यावधि पाये जाते हैं। इस रास को भावना का इन पर ऐसा प्रभाव पडा कि ये श्रीकृष्ण की लीलाओ में लीन रहने के लिये दरबार और गृहस्थी से नाता तोड वृन्दावन चले आये और वहाँ किसी व्यास वश के साधु से दीक्षा ले यह किसी उपासना मे दृढ और मग्न होगये।" (घन-आनद ले० शभुप्रसाद बहुगुना, एम० ए० पृष्ठ २)

दीन जी ने अपने इस निर्णय का कोई ठोस आधार नहीं दिया इसलिये नके द्वारा किया हुआ विवेचन भी प्रामाणिक नहीं।

बाबू राधाकृष्णदास ने नागरीदास का जीवन-चरित्र काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कराया। उस जीवन चरित्र मे उन्होने किशनगढ के जयलाल कवि के एक पत्र का हवाला देकर इस प्रकार लिखा है—"सवत् १८७४ मे (सन् १७५७ ई०) मे शाहआलम सानी के समय में अहमद दुर्रानी ने मथुरा में कत्लेआम किया था। इस विषय में कवीश्वर जयलाल जी ने मुझे यह लिखा है—"कत्लेआम होने की खबर यहाँ कृष्णगढ रूपनगर में गुप्त आ पहुँची थी, नागरीदास के छोटे भाई बहादुरसिंह जी और नागरीदास के पुत्र सरदारसिंह ने उनको अर्जी लिखी थी कि कुटुम्ब यात्रा के लिए यहाँ अवश्य पधारे। तब इस धोखादंडे से यहाँ आगये थे फिर छः महीने रह कर पीछे वृन्दावन ही पधार गये। सवत् १८२० की भादव सुदी ३ को वृन्दावन में ही परलोक वासी हुये।"

इसके अतिरिक्त राधाकृष्णदासजी ने एक स्थान पर अपने लेख मे एक चित्र का उल्लेख भी किया है—'हमारे यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन चित्र है' नसमें नागरीदास जी और घनानन्द जी एक साथ विराजते हैं।

जयलाल कवि ने अपनी पुस्तक 'छप्पन भोग चन्द्रिका'—जिसका रचना काल वि० स० १९४७ है मे घनानन्द का तीन स्थानो पर निम्नलिखित उल्लेख किया है—

छप्पय

१— सुनि सुबोधिनी सहित भागवत भाष्य श्रवन किय।

कोई सम्बन्ध नहीं रहा। जिन हरिदास का उल्लेख नागरीदास की रचनाओं में है वे कौन हरिदास हैं कहना कठिन है। प्रसिद्ध स्वामी हरिदास वे तभी हो सकते हैं जब उन रचनाओं को जिनमे हरिदास का यश गाया है दूसरे नागरी दास जिनका जन्म सवत् १६०० विक्रमी के आस-पास हुआ है और जो स्वामी हरिदासजी की शिष्य परम्परा मे हुये हैं, को मान लिया जाय। जयलाल ने यदि किसी आधार पर भ्रम खाया है और कोई लिखित प्रमाण उन्हें नागरीदास, घनानद तथा हरिदास के सतसग का मिला है तो वे नागरीदास प्रसिद्ध नागरीदास रहे हो ऐसा कम सम्भव है।"

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने राधाकृष्णदास द्वारा दिये गये जयलाल कवि के पत्र को ही प्रामाणिक मानकर अपने मत का प्रतिपादन किया है। उन्होने पत्र को सत्य मानकर लिखा है—'इससे भी पता चलता है कि घनआनन्दजी और नागरीदासजी सम-सामयिक थे।' अपने मत की पुष्टि में मिश्र जी ने भारतेन्दु के मत को भी उद्धृत किया है—'कदाचित इसी से उतारे प्रति चित्र का उल्लेख भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'सुजान शतक' के आरम्भ मे हैं।' मिश्रजी ने राधाकृष्णदास के कथन की पुष्टि मे आगे कहा है—'नागरीदास नाम के चार महात्मा हुये हैं। राधाकृष्णदास ने चौथे नागरीदास के साथ जो सावनसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनन्दघनजी के सत्सग की चर्चा की है। इन नागरीदास का रचनाकाल सवत् १७८० से १८१६ तक माना है।" इस प्रकार मिश्रजी ने घनानन्द को चौथे नागरीदास के सम सामयिक मानकर राधाकृष्णदास के मत को ही मान्य सिद्ध किया है।

मिश्रजी ने घनानद की मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण मे नहीं मानी वरन् अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के आक्रमण में ही मानी है। उन्होने राधाकृष्णदास और ज्ञानवती त्रिवेदी के आधार पर सिद्ध किया है कि मथुरा पर अहमदशाहदुर्रानी का ही आक्रमण हुआ नादिरशाह का आक्रमण नहीं हुआ। नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्टों के आधार पर मिश्रजी ने घनानद की मृत्यु का काल सन् १७६७ (सवत् १८१७) माना है। यह अब्दाली के दूसरे आक्रमण का समय था। पहला आक्रमण सम्वत् १८१३ मे हुआ था।

गये। इधर की खोज मे उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमे इनके वश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ कुल आनन्द कवि वासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो विचार
रितु बसत सवत सरस सोरह से अरु साठ।
कोक मजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥

—(खोज, १६२३—१० बी)

अथवा

"रितु बसत सबत् सत सोरह आगत साठ।
कोक मजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥

—(खोज १६२६)

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर आनन्द कवि विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण मे अपनी 'कोक मजरी' नामक पुस्तक की रचना कर रहे थे। डा० ग्रियर्सन ने आनन्दघन या घन-आनन्द को कायस्थ कुल का तो अवश्य माना है किन्तु उनके काल का निर्णय उन्होने मुहम्मदशाह रँगीले के समय में ही माना है। मुहम्मदशाह रगीले ने स० १७७६ से स० १८०५ तक राज्य किया। इससे स्पष्ट है कि आनन्द-घन का रचना काल भी १८ वीं शती का उत्तरार्द्ध ही ठहरता है। किन्तु आनन्द कवि का रचना काल १७ वीं शती है। इस प्रकार इन दोनो कवियो के रचना काल में पर्याप्त अतर है। आनन्द-घन का रचना काल शिवसिंह सेंगर के 'सरोज' मे स० १७१५ दिया है इसलिए यह निर्विवाद है कि 'आनन्द' और 'आनन्द-घन' दोनों ही भिन्न कवि थे। आनन्द का रचना काल १७ वीं शताब्दी था और आनन्द-घन या घनानन्द का रचना काल १८ वीं शताब्दी था। आनन्द और घन-आनन्द की कविता भी एक स्तर की नहीं।

मिश्रबन्धुओ ने कृष्ण भक्त आनन्द-घन के अतिरिक्त एक और आनन्द-

निवासी थे। वह कोई महान् कवि नहीं थे। उन्होंने थोड़े से पद लिखे हैं। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इनका समय १६ वीं शती का उत्तरार्द्ध माना है और जैनमर्मी आनन्दघन का सत्रहवीं तथा वृन्दावन वासी आनन्दघन का समय १८ वीं शती माना है। मिश्रजी का विवेचन नितान्त वैज्ञानिक है और इसलिये मान्य भी। आनन्द-घन नाम के तीन महात्माओं की भिन्नता स्पष्ट है इसलिये जो विद्वान् इन तीनो में अभिन्नता ढूँढने का प्रयत्न करते हैं वह एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण नहीं रखते।

सुजान और उसके विषय में विभिन्न धारणायें :—

सुजान के नाम को लेकर भी विद्वानो में अनेक भ्रम फैले हैं। कुछ विद्वान तो सुजान को घनानन्द की प्रेयसी मानते हैं जैसा कि जनश्रुति के आधार पर वियोगी हरिजी ने भी माना है—

घन-आनन्द सुजान जान कौ रूप दिवानो।
वाही के रँग रँग्यौ प्रेम फदनि अरुझान्यौ॥
बादसाहको हुकम पाय नहि गायो इक पद।
पै सुजान के कहे चाव सो गायो धुरपद॥
× × ×
× × ×
प्यारे मीत सुजान सों नेह लगायौ।
लगन बान ते बिंध्यौ बिरह-रस मंत्र जगायौ

वियोगी हरि ने तो सुजान को ही घनानन्द के काव्य की प्रेरणा के रूप में माना है। सुजान के नाम को कवि ने कृष्ण भागवान को देकर अपने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम बना दिया है। आप स्वयं समझ सकते हैं कि जिस प्रेमिका को कवि ने अपनी रचना में इतना महत्व दिया वह किसी साधारण घटना के कारण नहीं वरन् प्रेम की उस चरमावस्था का फल है जो कवि के हृदय में अत्यन्त ही गहरी पैठ कर चुकी थी। घनानन्द के 'सुजान चरित्र' मे जितने कवित्त और सवैये हैं उनमे प्रेम की गूढ व्यजना इस बात का प्रमाण है

मे उनकी रचनाओ मे बिखरी घटनाओ तथा समकालीन अन्य ग्रन्थो का ही सहारा लेना पडता है।

रीतिकाल के स्वच्छन्द कवि घनानन्द भी इसी प्रकार के कवि हैं जिनका जीवन वृत्त भी जनश्रुतियो, अन्य कवियो की रचनाओ अथवा इतिहासकारो की खोजो के आधार पर ही अवलम्बित है। इस प्रकार अनुमान ही के आधार पर इनका जन्मकाल, रचनाकाल और मृत्युकाल विभिन्न विद्वानो ने निश्चित किया है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानो के मतो मे साम्य नही। इसके अतिरिक्त इनके नाम के विषय मे भी अनेको सन्देह विद्वानो ने उत्पन्न किये हैं जिसका मूल कारण यह भी है कि अनुसन्धान कर्त्ताओ को जो कविता उपलब्ध हुई हैं वह तीन नामो से हैं—आनन्द, आनन्दघन और घनआनन्द। यह नाम निस्सन्देह किसी भी विद्वान को भ्रम मे डाल सकते हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वानो ने तो इन तीनो को घनआनन्द के ही नाम के लिये प्रयुक्त हुआ माना है। कुछ विद्वानो ने आनन्द को घनआनन्द और आनन्दघन से पृथक माना है। क्योकि घनआनन्द का जीवन वृत्त किम्वदन्तियो के सहारे ही निर्मित किया गया है इसलिए एक प्रामाणिक जीवन वृत्त उसको नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानो ने जैनमर्मी आनन्दघन को भी आनन्दघन और घनानन्द के नाम से जोडने का प्रयत्न किया है किन्तु यह ठीक नहीं क्योकि जैनमर्मी आनन्दघन का नाम लाभानन्द जी था। यदि कुछ स्थलो पर उनकी रचनाओं मे विचारसाम्य है भी तो यह कोई विशेष महत्व की बात नहीं। इस प्रकार का विचार साम्य भक्तिकाल की कृष्णधारा के अनेकों कवियो मे पाया जाता है। नीचे हम विस्तार पूर्वक विभिन्न किम्वदन्तियो को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करके घनानन्द के जीवनकाल को देखने का प्रयत्न करेगे।

विभिन्न जनश्रुतियाँ:—

घनानन्द के विषय मे अनेकों किम्वदन्तियाँ और जनश्रुतियाँ प्रचलित थीं। इन्हीं को आ[illegible] बनाकर विभिन्न विद्वानो ने कवि के जीवन को प्रस्तुत करने [illegible] किया है। कवि की [illegible] मे जीवन [illegible] की नितान्त [illegible]

करते रहे। इसके अतिरिक्त उस काल मे एक हिन्दू का मुस्लिम युवती को वरण करना भी आसान नहीं था। इसीलिए दोनो का प्रेम गुप्त रूप से ही चलता रहा होगा। किन्तु अन्य कर्मचारियों के भडकाने के कारण सुजान ने घनानद के प्रेम को ठुकरा दिया हो और इसी कारण वह वृन्दावन आकर अपने उसी लौकिक प्रेम की झॉकी कृष्ण और राधा के आध्यात्मिक प्रेम में देखने लगे हो। जिन ग्यारह कवित्तो में से एक कवित्त ऊपर उद्धृत किया है उसमें प्रेम की प्रखर व्यजना है। अन्य कवित्त भी इसी प्रकार प्रेम की तीव्रता को प्रदर्शित करने मे समर्थ हैं।

सीख सुनै नहि मोमन नेक सु तो तन देखि कै ऐसौ लुभानो।
लाज तजी कुलकान तजी सब लोक चवाई में नॉव धरानौ॥
सुजान कहै सुनि मोहन चालम मोहनी सी पढ़ि डारी है मानौ।
नेह लगाय के पीठ न दीजिए हाय इती विनती उर आनौ॥

इस कवित्त मे स्पष्ट है कि सुजान का हृदय भी प्रियतम पर उतना ही मोहित था कि उसने लज्जा को त्याग दिया, कुल की मर्यादा को छोड दिया और चारो ओर उसके विषय मे अनेक प्रकार की बाते फैल रही थी। किन्तु उसे उन बातो की तनिक भी चिन्ता नहीं। चिन्ता तो केवल उसे इसी बात की थी कि उसका प्रियतम कहीं उसको प्रेम करके फिर पीठ न दिखा जाय।

वियोग की तीव्रता भी सुजान की उक्ति में अत्यन्त उच्चकोटि की है। इससे भी सिद्ध होता है कि उसको अपने किसी प्रेमी के वियोग मे तड़पना पड़ा होगा। घनानन्द की रचना में सुजान के वियोग के कारण हुई व्यजना अत्यत ही तीव्र है।

श्री शभुप्रसाद बहुगुना सुजान नाम को राधा और कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ मानते हैं। उनका कथन है—"किन्तु सूक्ष्म अध्ययन साफ बतलाता है कि सुजान शब्द का प्रयोग राधा और कृष्ण दोनो के लिए कवि ने किया है और इनके अभिन्न प्रेम रूप को ही 'प्रेम को महोदधि' 'आनन्द को अम्बुद'

इसलिए घनानन्द का जीवनवृत्त विभिन्न रूपो में चित्रित किया गया। सबसे प्राचीन जनश्रुति यह थी कि कवि घनानद मुगल वश के विलासी बादशाह मुहम्मदशाह रगीले के यहाँ नौकर थे। अपनी तीव्र बुद्धि और चतुरता के कारण यह मीर मुशी बन गये। यह भी कहा जाता है कि बादशाह के दरबार की सुजान नामक वेश्या पर घनानद आसक्त हो गये थे। इनको सगीत से अत्यन्त प्रेम ही नही था वरन बहुत अच्छा गाते भी थे। किंतु बादशाह के दरबार में अनेको बार कहने पर भी इन्होंने अपना सगीत नहीं सुनाया। इस पर कुछ लोगो ने बादशाह के कान में इस बात को डाल दिया कि यदि सुजान कहेगी तो घनानद अवश्य गाना उसको सुना देंगे। बादशाह ने सुजान को बुलाया और सचमुच ही उसके कहने से घनानद ने विभोर होकर गाया। वह दरबार के नियमो की अवहेलना कर गये। फल यह हुआ कि उनको दिल्ली छोड़ने की शाही आज्ञा मिली। कहा जाता है कि चलते समय कवि ने सुजान से अपने साथ चलने को कहा किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। घनानद निराशा पूर्ण हृदय को लेकर चल दिये। उन्होने सुजान को राधा-कृष्ण के रूप मे परिवर्तित कर दिया और अपने प्रेम के उद्‌गारो को प्रकट कर पीयूष की ऐसी स्रोतस्विनी बहाई जिसने उनको ही अमरत्व प्रदान नहीं किया वरन् अनेको व्यथित हृदयो को सिक्त कर दिया। सॉसारिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम बना दिया। अपने जीवन को उन्होने उस प्रेम की स्मृति में ही समाप्त किया और वृन्दावन में रहकर राधा-कृष्ण के चरणो पर ही इन्होने अपने शरीर को न्योछावर कर दिया।

इनकी मृत्यु के विषय में किम्वदती है कि जिस समय नादिरशाह के लोलुप सरदार धन के कारण निरीह जनता को तलवार की धार से उतार रहे थे उस समय किसी ने उनसे कहा कि व्रजभूमि मे बादशाह का मीर मुशी रहता है। सरदार इनके पास गये और इनसे धन की मॉग की और अन्त मे इनको मार दिया।

उपर्युक्त जनश्रुति को श्री वियोगीहरि ने पद्यबद्ध करके घनानन्द के जीवन-चरित्र को अधिक प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होने

गैयन कौ टोपी रूप धरे अभिमान है ॥
पाप को भवन करै अगम-गमन ऐसौ
मुडिया अनन्द घन जानत जहान है ।
डफर बजावै डोम डाढ़ी सम गावै काहू
तुरकै रिझावै तब पावै झूठौ नाम है ।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी कौ सेवक है
तजि राम वाकौ पूजै काम धाम है ॥

\+ × ×

लोहा ज्यों लगाम जैसे चलनी को चाम है ।
पीवै भग कुन्डा सग राखै००गुन्डा००
भसुन्डा अनन्दघन मुएडा सरनाम है ।

अन्तिम कवित्त में कवि ने घनानन्द की इच्छा को इस प्रकार प्रकट किया है—

'मुदित अनन्द घन कहत विधाता सो यो
लाल कौ आसन दीजो गारी मोहि गावैगी ।
मो मुख कौ पीकदान करियौ सुजान प्यारी
हुरकिनी तुरकिनी थूकि अति सुख पावैगी ।
धोती कौ इजार दुपटी को पिसवाज और
देहुने रूमाल ताकौ पूछना बनावैगी ॥
पागीया पायदाज कीजियौ गरीब निवाज
भरि गये मोमन पलिग पर आवैगी ।'

उपर्युक्त कथन से आप सोच सकते हैं कि सुजान की कथा समाज में कितना उग्ररूप धारण कर चुकी थी । घनानन्द को इस प्रेम के लिए न जाने और कितनी कटु आलोचना न सुननी पडी हो । लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुजान एक वेश्या थी और उस पर घनानन्द तन मन धन न्योछावर कर चुके थे । सामाजिक बन्धनो को तोडने में असमर्थ होने के कारण कवि ने

अपनी पुस्तक 'कविकीर्तन' (सम्वत् १६८० वि०) मे ऊपर दी हुई जनश्रुति को इस प्रकार रखा—

> "घन आनद सुजान को रूप दिवानो ।
> वाही के रग रग्यो प्रेम फदनि अरुझानो ॥
> बादशाह को हुक्म पाय नहि गायो इक पद ।
> पै सुजान के कहे चाव सो गाये धुरपद ॥
> बादशाह ने कोपि राज्य ते याहि निकारयो ।
> वृन्दावन मे आय वेष वैष्णव को धारयो ॥
> प्यारे मीत सुजान सों नेह लगायौ ।
> लगन बान ते बिध्यो बिरह रस मत्र जगायो'

कुछ विद्वानों ने एक और जनश्रुति को भी आधार बनाने का प्रयत्न किया है। जनश्रुति है कि महाराज सूरजमल के दरबार मे देव और घनानद मे वादविवाद हुआ जिसका कारण था अपनी-अपनी कविता की श्रेष्ठता सिद्ध करना। एक सज्जन ने इस जनश्रुति के आधार पर दोनों कवियों की सुन्दर कविताओं को तुलनात्मक दृष्टि से रख कर प्रस्तुत भी किया है। इस प्रकार घनानद और देव को एक ही समय के कवि प्रमाणित किया है।

घनानद के जीवन से सम्बन्धित जनश्रुतियों को सर्वप्रथम रीवाँ नरेश रघुराज सिंह ने अपनी पुस्तक 'भक्तमाल' मे सम्वत् १८८० मे सग्रहीत किया। अन्य विवरण इनके बाद के है—

> "एक भक्त का पुनि कहो घनआनद इतिहास ।
> घनआनद है नाम जिन सुनत हरत भवत्रास ॥

> मथुरापुरी [illegible] घेरे । लाग्यो सवत [illegible] पड़े चहु फेरे ॥
> [illegible] ताहु सुना अब गाई । दिल्ली मे शाहिजादा कोई ॥
> एक [illegible] [illegible] लिआयो । सबै मथुरियन हास बढायो ॥
> [illegible] । डाग्यो शाहिजादा के भाला ॥

सौदर्य का वर्णन, व्रजविलास, वृन्दावन की शोभा का वर्णन, वृषभानपुर का महत्व आदि सब वर्णन इस बात का प्रमाण है कि घनानन्द ने कृष्ण की लीलाओ अथवा अन्य सिद्धान्तों को ध्यान मे रखकर ही अपने काव्य का सृजन किया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सं० २००० तक की खोज में निम्न-लिखित ग्रन्थों के हस्तलेख उपलब्ध किये थे।

१—घनानन्द कवित्त–(००-७६)
२—आनन्द घन के कवित्त-(६-१२५, २६-१२ ए)
३—कवित्त-(२६-११६)
४—स्फुट कवित्त-(३२ ७ सी)
५—आनन्द घन जु के कवित्त-(४१-१० ख)
६—सुजान हित-(१२-४ बी)
७—सुजान हित-प्रबन्ध-(२६-११६ बी)
८—कृपाकन्द निबन्ध-(२-६६)
९—वियोग-वेलि-(१७-८ बी, २६-११६ बी)
१०—इश्कलता-(१२-४६, ३२-७ ए)
११—जमुना जस-(४१-१० क)
१२—आनन्द घन जू की पदावली (२६-११ बी, दि० ३१-६)
१३—प्रीति पावस-(१७-८ ए, २६-११६ ए)
१४—सुजान विनोद-(२३-१४)
१५—कवित्त सग्रह-३२ ७ बी)
१६—रस केलि वल्ली-००-७६)
१७—वृन्दावन सत-(२२-७ डी)

उपर्युक्त ग्रन्थो की सूची मे कुछ ग्रथ घनानन्द कवि के नहीं हैं लेकिन फिर भी उनके नाम से भ्रमवश प्रचलित होगये हैं। जैसे, 'वृन्दावन संत' की रचना भगवत मुदित नाम के कवि ने की है जो श्री हरिदासजी के शिष्य माधवमुदित के पुत्र थे। इसी प्रकार और भी कुछ रचनाएँ हैं जो इनके नाम से भ्रम वश ही प्रसिद्ध हो गई हैं लेकिन उन के रचयिता अन्य ही

९—इश्कलता
१०—यमुना-यश
११—प्रीति पावस
१२—प्रेम पत्रिका
१३—प्रेम-सरोवर
१४—ब्रजविलास
१५—सरस वसन्त
१६—अनुभव चन्द्रिका
१७—रंग बधाई
१८—प्रेम पद्धति
१९—वृषभानुपुर सुषमा
२०—गोकुल गीत
२१—नाम माधुरी
२२—गिरि पूजन
२३—विचार सागर
२४—दान घटा
२५—भावना प्रकाश
२६—वृंदावन मुद्रा
२७—व्रज स्वरूप
२८—गोकुल चरित्र
२९ —प्रेम पहेली
३०—रसना यश
३१—गोकुल विनोद
३२—वृज प्रसाद
३३—मुरलिका मोह
३४—मनोरथ मंजरी
३५—व्रज-व्यवहार
३६—गिरि गाथा
३७—व्रज वर्णन
३८—छन्दाष्टक
३९—त्रिभंगी छंद
४०—कवित्त संग्रह
४१—स्फुट
४२—पदावली

इस प्रकार घनानन्द की रचनाओं की संख्या ४० के लगभग पहुँचती है। कुछ तो इतनी छोटी रचना हैं कि उनको यदि कविता कहा जाय तो उपयुक्त होगा। लेकिन सुजान हित, कृपाकन्द, प्रेमपत्रिका, पदावली अवश्य ही एक सुन्दर और बड़ी पुस्तक के आकार में मानी जा सकती हैं।

है कि किसी मुसलमान शाहजादे के क्रोध ने मथुरा निवासियों को पीडित किया और उसी क्रोध का भाजन रसिक कवि घनानंद को भी बनना पड़ा और इस प्रकार उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई। घनानन्द उस समय 'राधा माधव' के ध्यान मे मग्न 'सखी रूप' से उनकी शोभा को देख रहे थे। इसके अतिरिक्त रीवा नरेश ने यह भी स्पष्ट किया है कि घनानंद की यह कथा ब्रज मे प्रत्येक मनुष्य को विदित है और उसी कथा का सक्षेप मे उन्होने वर्णन किया है। इस जनश्रुति मे उस शाहजादे का नाम अथवा उसके वश का नाम यदि दिया होता तो बडी सरलता से घनानन्द के काल का निर्णय हो जाता। किन्तु ऐसा न होने से कवि के जीवन काल के विषय मे केवल इतना ही सत्य भासित होता है कि उनकी मृत्यु मथुरा मे किसी मुसलमान शासक के क्रोध के कारण हुई। घनानन्द राधा-कृष्ण के उपासक थे और सखी भाव से उनकी आराधना करते थे।

अन्य विद्वानों की खोज तथा अनुमान--

ऊपर हम वियोगी हरि द्वारा किया हुआ घनानन्द के काल का निर्णय एक जनश्रुति के आधार पर दे चुके है जिसमे उन्होने घनानन्द का जन्म काल सवत् १७८६ माना है और उनका सुजान नामक वेश्या से प्रेम बताया है। लेकिन लाला भगवानदीनजी ने अपनी खोज मे वियोगीजी के काल निर्धारण को अमान्य सिद्ध किया। उन्होने अपनी खोज को 'लक्ष्मी पत्रिका' मे प्रकाशित कराया और उन्होने घनानन्द के जीवन काल को इस प्रकार माना है— आनन्दघन का जन्म लगभग स० १७१५ के प्रतीत होता है। और मृत्यु सवत् १७९६ मे जान पड़ती है। ये दिल्ली के रहने वाले भटनागर कायस्थ थे और फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। जनश्रुति इनको अबुलफजल का शिष्य भी बतलाती है। किसी छोटे ओहदे से बढते २ ये बादशाह मुहम्मदशाह के खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) होगये। जनश्रुति यह बतलाती है कि घनानन्द को बचपन से ही रासलीला देखने का शौक था। बहुधा [illegible] [illegible] अपने ऊपर लेकर दिल्ली मे [illegible] [illegible] लीला मे भाग लेते थे। [illegible] पद

महाकवि घनानद का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार अपने युग की परिस्थि-तियो के अनुकूल ही हुआ। किन्तु वह स्वतन्त्र चेता भी थे इसलिए उन्होने उस युग के दोषों के सन्मुख सीना अडाकर उनका सामाना किया और काव्य-धारा को नवीन मार्ग की ओर उन्मुख करके अपना स्थान स्वतन्त्र कवियो मे रखा। इसलिए घनानद के काव्य पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम उनके युग की उन परिस्थितियो को देखे जिन्होने उस काल के कवियों को प्रभावित किया और घनानद पर भी कुछ प्रभाव पडा।

राजनीतिक परिस्थितियाँ— घनानद का रचना काल १८ वीं शताब्दी है। उस समय मुगल साम्राज्य अपना पूर्ण विकास करके अवनति की ओर जाने लगा था। इससे पूर्व जहाँगीर और उसका पुत्र शाहजहाँ विलासिता शान-शौक्त के साथ उत्तर भारत ही नहीं वरन् दक्षिण भारत के बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यो तक अपनी धाक फैला चुके थे। हिन्दू राजा उनकी वीरता का लोहा मान चुके थे। राणा प्रताप जैसे वीरो का भारत वसुन्धरा पर अभाव हो चुका था। एक मानसिंह नहीं अब अनेको मानसिंह दासता को ही गौरव समझने लगे थे। भामाशाह जैसे पूँजीपति अब विलीन हो चुके थे। मुगल दरबार की धाक सात समुद्र पार तक व्याप्त हो चुकी थी। ससार में मुगल बादशाह की समानता करने वाला अन्य कोई भी बादशाह नहीं था। मुगल साम्राज्य की सीमाये उत्तर में कन्धारसे आगे तक, दक्षिण मे बीजापुर गोलकुण्डा तक, पश्चिम में बिलोचिस्तान और सिन्ध तक तथा पूर्व में बगाल तक फैली हुई थी। शाही खजाना अपार धन से भरा हुआ था। शासक लोग मदान्ध हो रहे थे। विलासिता का रग भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ने मुक्त हस्त से प्रजा की सम्पत्ति को अपनी शान और विलासिता के ऊपर खर्च किया। उस विला-सिता के कारण बादशाह राजनीति से दूर पड गया और उसके सूबेदार उसके विरुद्ध षडयत्र रचने लगे। शाहजहाँ के जीवन काल में ही उसके पुत्रों की राज्य लिप्सा ने पारस्परिक युद्ध प्रारम्भ करा दिये और निरकुश और कठोर हृदय पुत्र औरंगजेब अपने भाइयो को स्वर्गधाम पहुँचा कर तथा अपने पिता को बन्दी बनाकर सिहासनासीन हो गया।

सिखो का दमन प्रारम्भ किया। फल यह निकला कि सिखों का विरोध भी तीव्र हुआ।

दक्षिण में शिवाजी ने मराठों की सेना बनाकर गुरिल्ला युद्ध प्रारम्भ कर दिया। औरगजेब को स्वयं दक्षिण मे रहना पडा किंतु वह जीवन भर मराठो को न दबा सका। उधर बुन्देलखण्ड मे चम्पतराय और उसके पुत्र छत्रसाल ने भी दिल्ली के सिहासन के विरुद्ध अपनी तलवार को उठाया।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में एक जातीय स्वाभिमान की लहर व्याप्त हुई। औरगजेब जीवन भर इन विद्रोहो को दबाने का प्रयत्न करता रहा। वह एक ओर दबाने का प्रयत्न करता था तो दूसरी ओर से उसको चुनौती दी जाती। परिणाम स्वरूप साम्राज्य की जड़े खोखली होने लगीं जिसको बादशाह ठीक करने में असफल होने लगा और अन्त में वह इन्हीं कठिनाइयो मे ही इस ससार से चल दिया।

मुगलो ने अपने विशाल साम्राज्य को सूबेदारो और सामन्तों के ऊपर छोड़ रखा था। औरगजेब के कठोर व्यक्तित्व के कारण वे लोग दबे रहे। किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उनमें स्वेच्छाचारिता और निरकुशता का प्राधान्य हुआ और धीरे २ उन्होने अपना प्रभुत्व बढा लिया। जागीरदारी की इस प्रथा के कारण जनता शोषण से पिस रही थी। किसानो की दशा अत्यन्त ही बिगड़ चुकी थी और वे खेती छोड़ कर मजदूरी करने को अच्छा समझते थे। जब गरीबी के कारण किसान लगान नहीं देते थे तो उनको गुलाम के रूप मे बेच दिया जाता था।

औरगजेब के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियो में प्रबन्ध की क्षमता न होने के कारण वह अमीर और उमरावो की उँगली के इशारे पर नाचने लगे, उनमें अकर्मण्यता ने घर कर लिया था। विलासिता का दौर भी दिन प्रतिदिन अपनी वृद्धि पर था। महलो में अनेको बेगमों और उनके प्रेमियो को लेकर विद्वेष की आग भड़कती रहती थी। बादशाह स्वय विलास में लीन रह कर इन बातों की ओर ध्यान नहीं देते थे। अमीर लोगो का सिक्का इतना जम रहा था कि बादशाह का अस्तित्व उनकी कृपा पर ही निर्भर था। इन कमजोरियों के कारण साम्राज्य में उपद्रवो का बढना प्रारम्भ हुआ। भरतपुर के जाट,

पुष्टि मार्ग सिद्धाँत समझि सुनि सुनि हिय भर लिय ॥
आनन्द घन हरिदास आदि बच सुनि सुनि ।
धमारादि मे कही वहै नहि कही सु शुक मुनि ॥
हरिलीला सुनि प्रेम वश दृग सजल वचन गद्‌गद्‌ धरिय ।
श्रीमन्नृत्य गुपाल की श्रवन भक्ति नागर करिय ॥"

छप्पय

२— अकुर रूप सु भयो प्रेम लघु जबै हीय मधि ।
हरिगुन चर्चा कहत सुनत सचारी विधि मधि ॥
आनन्दघन हरिदास आदि ला सन्त सभा मधि ।
प्रकट भये अनुभाव सवैया के जु यथाविधि ॥
ब्रज वृन्दावन वास बसि बर भक्त तक्त शोभा सु लहि ।
श्रीमन्नृत्य गुपाल को नृग नागर मध्यम प्रेम गहि ॥

३ —(अथ सत सगति महिमा)

छप्पय

विप्रनि सो सुनि वेद भागवत धर्म सुधारयो ।
हरीदास हित मान कही सोही अनुसारयो ॥
मुरलिदास और बसिदास सौ समय गुजारयो ।
आनन्दघन का सग करत तन मन का वारयौ ॥
नतिन गुपाल मिलि जानयो सत-सगति नागर करिय ।
गोपद समान सुच मान कर भव सागर को लहि तरिय ॥

[illegible] उद्धरणों में घनानन्द के विषय में इतनी ही जानकारी मिलती है कि घनानन्द और हरिदास समकालीन थे और उनके उपदेशों को नागरीदास [illegible]। इससे सिद्ध होता है कि नागरीदास जो इन दोनों महात्माओं के [illegible] थे और घनानन्द पर अपने तन मन को न्योछावर करते थे।

[illegible] हुये । [illegible] ने निज [illegible] नाम [illegible] था और इन्हीं के

फिर भी थोडी बहुत थी किन्तु औरंगजेब ने धार्मिक मामलो में भी हिन्दुओं को स्वतन्त्र नहीं रहने दिया।

वैष्णव मत का समस्त उत्तरी और दक्षिणी भारत में जोर था। राधा और कृष्ण की माधुर्य भाव की उपासना इन दिनो में अधिक विकास कर चुकी थी। वल्लभाचार्य और फिर उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना करके कृष्ण भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया था। वल्लभ सम्प्रदाय एव अन्य वैष्णव सम्प्रदायो की फिर कितनी ही शाखा प्रशाखाये हुई और उनकी अलग अलग गद्दियॉ स्थापित हो गई। जिस सम्प्रदाय को वल्लभ ने भक्ति और प्रेम के समन्वय को प्रदर्शित करने के लिये चलाया था, वह भी अब राजाओं और धनिक लोगों के लिये स्वर्ग में स्थान निश्चित करने में लग गया। वाह्य आचार विचार और ढोंग को इन वैष्णव धर्मानुयायियों ने भी अपनाया और इस प्रकार सम्प्रदाय और कर्म के रूप में कुछ लोग अपनी विलास प्रिय मनोवृत्ति को तृप्त करने में लग गये। वल्लभ-सम्प्रदाय की इन गद्दियो और उनके मन्दिरो की शान शौकत के सन्मुख राजा लोग अपने आपको हीन समझते थे। उनके ठाट-बाट को देखकर साधारण व्यक्ति तो उनको राजाओ का भी राजा समझता था। वल्लभ सम्प्रदाय के गोसॉई लोगों को देखकर लोग उनको भक्त नहीं कहते थे वरन् महाराजाधिराज के नाम से ही सम्बोधित करते थे। बगाल में चैतन्य महाप्रभु का सम्प्रदाय था। वह भी कृष्ण के उपासक थे। उन्होने कृष्ण से अधिक राधा की उपासना पर जोर दिया था। इसीलिये इस सम्प्रदाय में शृङ्गार भावना अधिक थी। इस सम्प्रदाय में राधा को परकीया रूप में स्वीकार किया था और यही कारण था कि विद्यापति के जितने शृगारी पद थे उनको भी इस सम्प्रदाय के भक्तो ने अपना लिया और उनको कीर्तन मे भी प्रमुख स्थान दिया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण भारत मे भक्ति का सरल रूप दे दिया गया था। जिस प्रकार की लोक रुचि थी उसके अनुकूल ही भक्ति की पद्धतियॉ प्रचलित हो चुकी थीं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि इन समस्त सम्प्रदायों का प्रारम्भ उन महात्माओ और तत्व चिन्तको ने किया था जो धर्म और शास्त्रो के पूर्ण पडित थे। किन्तु

साथ घनानन्द जी की मित्रता थो। प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास मे इन्हीं का कविता काल स० १७८० से १८१६ तक माना है।

कवि जयलाल के 'नागर समुच्चय' मे नागरीदास और घनआनन्द के व्रज से जाने के विषय मे एक दोहा है उससे भी कवि के समय का पता लगता है—

अठारह से ऊपरै सवत् तेरह जान।
चैत्र कृष्णा तिथि द्वादशी व्रज ते कियौं पयान॥

अर्थात् स० १८१३ मे इन दोनो महात्माओ ने व्रज से प्रस्थान किया था। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द की मृत्यु स० १८१३ के अनन्तर ही हुई।

काशी नागरी-प्रचारिणी की त्रैवार्षिक खोज विवरण मे चचा हित वृन्दावनदास की 'हरिकलावेलि' के आधार पर इस प्रकार का विवरण है—"काबुल या कधार का रहने वाला एक कलदरशाह मुसलमानों की एक फौज लेकर पहली बार स० १८१३ में और दूसरी बार स० १८१७ मे व्रज मे चढ़ आया था।"

'हरिकलावेलि' मे इस आक्रमण का उल्लेख प्रारम्भ में ही इस प्रकार दिया है—

"ठारह सै तेरहौ वरप हरि यह करी।
जमन वियोगी देश विपति गाढी परी॥
तब मन चिन्ता बाढा साधु पतन करे।
हरि हीं मनहुँ सिष्टि-सघार काल आयुध धरे॥

दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
अहो नाथ तुम जन हते, भये कौन विधि पोच॥
बार बार सोचत यही गये प्रान बौराइ।
सन्त करे वध जमन नै यह दुख सह्यो न जाइ॥
सहर फरुखाबाद जहँ गये सुरधुनी पास।
चैत्र सुदी एकादशी तहाँ भयौ इक रास॥
तीन पहर रजनी गई वे कवि कीयो गान।

रक्षक और लोक रञ्जक रूप का दिग्दर्शन था, वह भक्ति अब पूर्णतः लोप हो गई और उसके स्थान पर केवल ऐन्द्रिक्ता और विलासिता की भावनाओ की पुष्टि को ही भक्ति का रूप दे दिया गया।

गोस्वामीजी के राम का रूप अवश्य आदर्श को लिये हुये ही रहा किन्तु राम की भक्ति कृष्ण के इस विलासी रूप के सम्मुख कुछ ही लोगों के लिये रह गई। रामचरित मानस का पाठ अवश्य कुछ धर्मप्राण लोगो के यहाँ कभी-कभी हो जाता था अन्यथा सम्पूर्ण धार्मिक वातावरण शृंगार की आड़ में नायिकाओ के भेद-प्रभेद से भर गया। राधा को अनेकों नायिकाओं के रूप ों देखा गया। कृष्ण को राधा के साथ केलि-कराकर ही इन भक्तों की भक्ति का महत्त्व रहता था। जिस मर्यादा के लिये गोस्वामी जी इतने सतर्क थे वही मर्यादा अब इन भक्तो के सम्मुख कातर होकर भाग गई थी। सम्पूर्ण उत्तर भारत मे भक्ति के शृंगार परक रूप को अपना लिया गया था।

उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी भक्त थे जो किसी भी सम्प्रदाय और मत विशेष के नियमो को न मानकर बडे प्रेम और विश्वास के साथ ईश्वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को प्रदर्शित करते थे। इस प्रकारके कवियो मे सरसता और शृङ्गार प्रियता तो अवश्य थी किन्तु आत्मलीनता और प्रेम विभोरता के कारण रीतिकालीन भक्तो में इनका नाम अधिक आदर के साथ लिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूफी-मत की प्रेम की पीर भारतीय भक्ति और उपासना में घर कर चुकी थी और इन भक्त कवियों ने भी प्रेम की पीर को अपनाया। रसखान इसी प्रकार के कृष्णभक्त थे जो केवल कृष्ण की रूप माधुरी पर आकर्षित होकर ब्रज की पवित्र भूमि पर ही जीवन-पर्यन्त लोटते रहे। इसी प्रकार के भक्त कवियों मे महाकवि घनानन्दजी भी थे। उन्होने भी अपने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देकर उस समय के विलासी-समाज को चुनौती दी थी। प्रेम की पीर से अत्यधिक प्रभावित भक्त कवि नागरीदासजी थे जो जीवन पर्यन्त राजकुल को छोड़कर वृन्दावन में ही ईश्वर भजन में अपना समय व्यतीत करते रहे। इस प्रकार उस शृङ्गारिक मनोवृत्ति के काल में शृङ्गार परक भक्ति के भी दो रूप थे—एक अश्लील शृङ्गारिकता को प्रदर्शित करने के लिये ही राधा और कृष्ण के पवित्र नामो

तहाँ एक कौतुक जाकौ करौ बखान ॥
आनन्द घन को ख्याल इक गायौ खुलि गये नैन ।
सुनत महा बिहबल भयौ मन नहि पायौ चैन ॥
ऐसेहू हरि-सन्त-जन मारे जमननि आइ ।
यह अति देखि हियो भयो लीनौ सोच दबाइ ॥"

यवनो का आक्रमण कवि के कथनानुसार दो बार हुआ—प्रथम स० १८१३ मे और द्वितीय स० १८१७ मे । किन्तु घनानन्द की मृत्यु के विषय मे कवि यह स्पष्ट कहता है कि वह किस आक्रमण मे मारे गये । कवि हित वृन्दावनदास जी ने कवि घनानन्द की मृत्यु के विषय मे एक कवित्त स० १८१७ मे लिखा था—

विरह सो तायौ तन निबाह्यौ बन साँचो पन,
 धन्य आनद घन मुख गाई सोई करी हैं ।
एहो ब्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुम्हहू कौ,
 कहा नीकी प्रभु यह जग मे बिस्तरी है ॥
गाढौ ब्रज उपासी जिन देह अन्त पूरी पारी,
 रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है ।
वृन्दावन हित रूप तुमहू हरि उडाई धूरि,
 ऐ पै साची निष्टा जन ही की लखि परी है ॥

इस कवित्त के आधार पर यह तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनकी मृत्यु ब्रज में ही हुई ।

परन्तु जनश्रुति के आधार पर घनानद का समय मुहम्मदशाह रंगीले के समय में ठहराता है और मृत्यु प्रसिद्ध आक्रमणकारी नादिरशाह के भयंकर आक्रमण के फलस्वरूप हुई मानी जाती है । इस जनश्रुति के आधार पर घनानद का रचनाकाल [illegible] जी ने संवत् [illegible] लिखा माना है । किन्तु इस जनश्रुति के [illegible] प्रमाण [illegible] जी ने नहीं दिया जिससे इस [illegible] की प्रामाणिकता सिद्ध हो सके । केवल जनता में

लेने लग गये थे। किन्तु साधारण जनता का चरित्र इन दरबारियों की अपेक्षा अच्छा था।"

साहित्य और कला—समाज की मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब ही साहित्य पर पडता है। जिस प्रकार का समाज होगा उसी प्रकार का साहित्य भी। इस पतनोन्मुखकाल के साहित्य पर समाज की जर्जरित अवस्था की प्रतिच्छाया पूर्ण रूपेण पड़ी थी। औरगजेब साहित्य और कला का शत्रु था। उसके पूर्वज अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय मे साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। उनके समय मे महान कवि, सगीतज्ञ तथा चित्रकार आदि पैदा हुये थे। इन बादशाहो ने कलाकारो का उचित आदर किया था और उसका परिणाम यह हुआ कि जनता भी साहित्य और कला की ओर अपनी अभिरुचि रखती थी। किन्तु औरगजेब ने कला को दफन करवा दिया। दिल्ली के अनेकों कलाकारो की रोजी चली गई और उनको जान बचाकर दिल्ली से इधर-उधर भागना पडा। कवि लोग सामन्तो और जागीरदारो के यहाँ उनका मनोविनोद करने लगे। उनके आश्रयदाताओ मे विलासिता ही अधिक मात्रा मे थी इस कारण कवि लोग भी उनकी मनोवृत्तियो के अनुकूल ही विभिन्न नायिकाओ और उनके अग-प्रत्यग का वर्णन करने मे लग गये। जो कवि अपनी कविता में जितनी अधिक कामुकता और ऐन्द्रिकता का रूप प्रस्तुत कर सकता था वह उतना ही सफल कवि माना जाता था। इसलिये काव्य भी भक्ति के समान वाह्य चित्रण और सजावट को लेकर ही चल रहा था। धीरे-धीरे यह वाह्य-सजावट और चमत्कार कविता मे इतना बढा कि नायिका अपनी साँसो के उतार-चढ़ाव के साथ छै-छै, सात-सात हाथ आगे-पीछे आकर झूले के से झोटे लेने लगी। विरहिणी के आँसू छाती पर गिरकर छनन-छनन की आवाज करने लगे। कवियो ने नायिका के हृदय को पत्थर के कोयले की भट्टी बना दिया। राधा और कृष्ण को साधारण नायिका और नायक का रूप देकर उनको मुक्त रूप से विलास मे रत करा दिया। परिणाम यह हुआ कि कभी यह रीतिकालीन राधा कृष्णाभिसारिका नायिका बनकर अपने नायक (कृष्ण) से मिलने जाती और कभी शुक्लाभिसारिका के रूप मे। उसके अग-अग को इन रसिक कवियो ने अपने आश्रयदाताओ के सन्मुख मुक्त रूप से वर्णित किया।

प्रचलित कथा के आधार पर घनानद के समय का ठीक होना सर्व सम्मति से नहीं माना गया।

लाला भगवानदीन जी की खोज के आधार पर घनानद जी का काल सवत् १७१५ से १७६६ तक माना जाता है। इन्होंने सुजान की चर्चा नहीं की। घनानद के काव्य की प्रेरणा सुजान इन्होंने नहीं मानी वरन् रासलीला को ही इसका आधार माना है। लाला भगवानदीन जी ने भी वियोगीहरि के समान ही अपनी खोजो का कोई भी आधार नहीं दिया। इसी कारण इनकी खोज भी विद्वानो द्वारा मान्य नहीं। श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना दीन जी की खोज का आधार न होने के कारण वैज्ञानिक नहीं मानते। उन्होंने अपनी 'घन आनद' के पृष्ठ तीन पर इस प्रकार आलोचना की है—"जन्म सवत् का आधार हो सकता है शिवसिह सरोज रहा हो। जान पडता है शिवसिंह सरोज के विवेचन के आधार पर अर्थात् यह देखकर कि १७४६ में बने 'कलिदास हजारा' का जहाँ अधिक उपयोग कवियो की जीवनी तथा कविता का विवरण देते समय सेगर ने किया है वहाँ 'आनँद घन दिल्ली वाले' के बारे मे नहीं लिखा है कि 'हजारा' मे इनकी कविता है। इस अनुमान से सम्भवत. प० रामचन्द्र शुक्ल तथा वियोगीहरि ने घनानद का जन्म सवत् १७४६ के आस पास माना है।"

राधाकृष्णदासजी ने घनानदजी को नागरीदास का मित्र सिद्ध किया है। पठानो का आक्रमण उन्होंने सम्वत् १८०४ (सन् १७४७) मे मुहम्मदशाह के समय मे लिखा है। सावन्तसिह (नागरीदास) को मुहम्मदशाह ने उस आक्रमण के समय दिल्ली बुलाया था। जयलाल कवि के पत्र का हवाला देते हुये राधाकृष्णदासजी घनानद के समय का अनुमान इस प्रकार लगाते हैं—"सावन्तसिह (नागरीदासजी) ने कहा हमें जाने दीजिये, और अपने पुत्र सरदारसिंह सहित दिल्ली गये। बादशाह ने लडाई मे नहीं भेजा। सम्भवत. उसी समय आनदघन से मित्रता हुई होगी। सन् १७४८ (स० १८०५) में मुहम्मदशाह मर गये। स० १८१३ मे नागरीदास ने कुटुम्ब-यात्रा के निमित्त प्रस्थान किया। उस समय उनके साथ आनदघनजी भी थे किन्तु जयपुर से लौट आये।"

चुका था। राधा और कृष्ण की पवित्रता को छिन्न भिन्न कर दिया गया और काव्य मे उनका स्थान यौवन की उमगो मे चूर कामुक नायक और नायिकाओं को दे दिया गया। उनके स्थूल और वासना जन्य प्रेम का चित्रण ही कवियो का परम कर्त्तव्य समझा जाने लगा।

पूर्व पीठिका—रीतिकाल की मुख्य धारा शृङ्गार भावना थी। अन्य रसो का नाम मात्र को यदि कहीं पर वर्णन मिल गया तो दूसरी बात है। किन्तु क्या यह शृङ्गार भावना कहीं से उसी समय अचानक आगई थी या किसी क्रमिक विकास के द्वारा आई थी? साहित्य में कोई भी विचारधारा कभी बिना क्रम के नहीं आ सकती। यह परम्पराओ के द्वारा अनेक उत्थान और पतन के रूपो से गुजर कर ही अग्रसर होती है। जिसमें शृङ्गार की भावना का उदय मानव सभ्यता और विकास के प्रथम चरण में ही हो गया होगा। सृष्टि के सृजन के साथ ही शृङ्गार भावना का उदय स्वाभाविक था। स्त्री-पुरुष का आकर्षण ही सृष्टि सृजन का कारण है और उसी आकर्षण से सौंदर्य का जन्म हुआ है। जिस वस्तु के प्रति मन का आकर्षण हो उसी वस्तु में मानव सौंदर्य बोध के तत्व को खोजने लगता है। मानव का प्राकृतिक स्वभाव है कि वह स्त्री की ओर आकर्षित हो। यह सत्य है कि प्रारम्भ से ही वह उसकी काम पिपासा का केन्द्र थी और उस समय मानव केवल उसकी ओर इसी आकर्षण को लेकर चला। किन्तु जैसे २ उसकी बुद्धि का विकास हुआ तो उसने नारी के उन रूपों को देखा जिनसे वह सृष्टि के विकास मे सहयोग देती है। वह अनेक कष्टो को सहन करके शिशु की सेवा में रत रहती है। स्त्री रूप से वह अपने शारीरिक सौन्दर्य के द्वारा मनुष्य को आकर्षित करती है। माँ के रूप मे उसके हृदय का सौंदर्य समस्त ससार मे बिखरा पडा है। इस प्रकार स्त्री के दोनो रूप सृष्टि के आदि काल से ही मोहक और आकर्षक रहे। वह कवि की प्रेरणा का केन्द्र आदि काल से ही बन चुकी थी।

सस्कृत के आदि कवि बाल्मीकि ने स्त्री के बाह्य सौंदर्य और आन्तरिक सौंदर्य दोनो का ही समावेश अपने काव्य में किया। इसी प्रकार महाभारत मे कुन्ती और द्रौपती दोनो को पुरुष के आकर्षण का कारण भी रखा है और साथ ही उनका अपने पति और पुत्र के साथ जो हृदय का व्यापक सबध था

राधाकृष्णदास और जयलाल के बीच जो यह पत्र-व्यवहार हुआ यदि इसको प्रामाणिक मान लिया जाय तो शुक्लजी, वियोगीहरि जी और लाला भगवानदीन द्वारा दिये हुये समय मे असत्य होने का आरोप सुगमता से किया जा सकता है। नादिरशाह के आक्रमण मे मरने की कथाये निमूर्ल सिद्ध हो जाती हैं। यदि नागरीदास और घनानंद की मित्रता सिद्ध हो जाती है तो यह भी निश्चित है कि घनानदजी की मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण मे नही हुई वरन् अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण मे हुई जिसको इतिहासकारो ने सवत् १८१४ (सन् १७५७) माना है। किन्तु राधाकृष्णदासजी ने अपनी मान्यता का जो आधार दिया है वह जयलालजी का पत्र है और उनके पास एक कागज है जिसमे केवल नीचे लिखा है घनानद और नागरीदास का चित्र। किन्तु चित्र का वास्तविक रूप कहीं गिर गया है। जब तक वह चित्र उपलब्ध नहीं होता उस समय तक राधाकृष्णदास द्वारा प्रतिपादित मत की सत्यता को कोई प्रामाणिक रूप नहीं मिलता है।

जयलालजी ने सम्भवत इन्ही आधारो पर 'नागर समुचय' के साथ छपे 'छप्पनभोग चन्द्रिका' मे तीन स्थानो पर घनानद और नागरीदास की मित्रता का वर्णन किया है। उन छप्पयो को हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। उनमे घनानद और नागरीदास के सम्बन्ध मे तीन पक्तियाँ आई है—'आनदघन हरिदास आदि सतन वच सुनि सुनि', 'आनदघन हरिदास आदि सो सत सभा मधि', 'आनन्दघन को सत करन तस मन का आग्या।' उपरोक्त पक्तियो मे जयलालजी ने घनानद, नागरीदास और हरिदास को सम सामयिक माना है।

जयलालजी के उपरोक्त कथन का वर्णन श्री शभुप्रसादजी बहुगुना ने अपनी पुस्तक 'घनानद' मे किया है किंतु उन्होने उसे प्रामाणिक नहीं माना। उनका कथन है [illegible] विचित्र उलझन तब सामने आती है जब नागरीदास की रचना में हरिदास का तो बार-बार नाम मिलता है किन्तु आनन्दघन का नाम कहीं नहीं मिलता। यदि प्रसिद्ध नागरीदास की [illegible] मित्रता आनन्दघन [illegible] तो निश्चय ही उनकी रचना [illegible] आनन्दघन का [illegible]। [illegible] सन्देह उत्पन्न [illegible] कि ये आनन्दघन और प्रसिद्ध नागरीदास का कभी

भी इसका अलौकिक रूप दृष्टिगोचर हुआ। भक्ति के आवरण मे भक्त कवियो ने सब कुछ कह डाला लेकिन उनके काव्य मे शृङ्गार के सतुलित रूप के ही दर्शन होते हैं। राधा के बाह्यसौन्दर्य के साथ कवियों ने उसकी आन्तरिक भावनाओं और मनोवृत्तियो के प्रसार को भी दिखाया। लेकिन रीतिकाल के कवियो ने राधा के उस पवित्र रूप को हटाकर उसे सामान्य नायिका के रूप में चित्रित किया।

हम कह चुके हैं कि रीतिकाल की शृ गार भावना का मूल स्रोत सस्कृत साहित्य में ही मिलता है। हिन्दी का नायिका भेद और नख शिख वर्णन भी सस्कृत के आधार पर ही विकसित हुआ। किन्तु जहाँ सस्कृत में यह एक सामान्य विषय था वहाँ हिन्दी में आकर यह २००-२५० वर्ष तक मुख्य विषय बना रहा। रीतिकालीन काव्य के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि किस प्रकार हिन्दी काव्य सस्कृत काव्य के तत्वो को अपने में समाहित करके विकसित हुआ। अमरुशतक के निम्नलिखित श्लोक को बिहारी के एक दोहे से मिलाने पर स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार बिहारी ने अमरुक के भाव को अपनाया है—

मुग्धे मुग्धतयैव नेतु मखिल. काल' किमारम्यते,
मान धत्स्व धृतिं बधान ऋजुता दूरे कुरु प्रेयसि।
सख्यैव प्रतिबोधता प्रतिवच स्तमाह भीतानना,
नीचैः शस हृदिस्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरःश्रोष्यति।

किसी सखी की उक्ति है। वह मुग्धानायिका को समझा रही है कि वह (मुग्धा) इसी तरह अपने समय का दुरुपयोग करेगी। हाव भाव में दक्ष हो जाओ, धीरज को धारण करो तथा अपने प्रिय को इतना सरल मत समझो। सखी के इस प्रकार कहने पर वह उत्तर देती है 'धीरे बोलो, कहीं ऐसा न हो कि मेरे हृदय में स्थित प्रियतम न सुन ले। इसी भाव को बिहारीलाल ने भी प्रदर्शित किया है—

सखी सिखावति मान विधि सैननि बरजति बाल।
हरुए कहि मो हिय बसत सदा बिहारीलाल॥

इसी प्रकार के अन्य सस्कृत ग्रथों के शृ गार परक श्लोकों को हिन्दी में

विकारा और समधिक लज्जावती। इन्हीं के पर्याय रूप केशव और देव ने भी किये। अन्तर इतना ही है कि जहाँ विश्वनाथ ने मुग्धा के तीन भेद किए वहाँ इन रीतिकालीन कवियों ने मुग्धा के भेद चार किये। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन अन्य कवियों ने इन भेदों के भी उपभेद कर डाले। इसके अतिरिक्त संस्कृत के 'रस मञ्जरी' नामक ग्रन्थ के अनुकरण पर चिन्तामणि, मतिराम आदि कवियों ने ज्ञात यौवना और अज्ञात यौवना के रूप में भी वर्गीकरण किया।

इसी प्रकार प्रौढा के भेदों में भी रीतिकालीन कवियों ने वृद्धि की। किंतु इसके भेदों की उतनी संख्या नहीं जितनी कि मुग्धा के भेदों की।

परकीया के भेद भी रीतिकाल के कवियों ने संस्कृत आचार्यों के आधार पर ही किये। किन्तु जहाँ संस्कृत के कवियों ने परकीया के दो भेद किये वहाँ हिन्दी के आचार्य कवियों ने ६ भेद करके उन रूपों को और अधिक बढ़ा दिया।

भिखारीदास रीतिकालीन आचार्यों में इस प्रकार के आचार्य थे जिन्होंने संस्कृत के भेदों के अतिरिक्त कुछ मौलिक भेद भी किये और उनके लक्षण भी उनकी अपनी खोज और बुद्धि का परिणाम था। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों ने नायिका भेद को सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार भी विस्तृत किया जो संस्कृत काव्य से नितान्त मौलिक और नवीन था। इस प्रकार रीतिकाल का सम्पूर्ण नायिका भेद रीतिकाल के कवियों की मौलिक कल्पना का परिणाम नहीं वरन् संस्कृत काव्य के आधार पर ही उसका उदय हुआ।

हिन्दी में नखशिख वर्णन की परम्परा का विकास भी संस्कृत के अनुकरण पर ही हुआ। संस्कृत में नखशिख वर्णन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। शृङ्गार रस की आलम्बन प्रायः नायिका ही होती थी। इसलिये उसके अंगों का वर्णन रस-परिपाक में अत्यन्त सहायक था।

अलंकार शास्त्र—रीतिकाल की कविता बाह्य-रूप-निरूपण पद्धति पर आधारित थी इसलिये उसमें अलंकारों को अधिक महत्त्व दिया गया। रीतिकाल के प्रथम आचार्य केशव ने अलंकारों के विवेचन का आधार संस्कृत लक्षण ग्रंथों को ही रखा। दण्डी का 'काव्यादर्श' ही उनका आधार रहा है। केशव ने दण्डी के उदाहरणों को भी उसी रूप में अपना लिया। किन्तु कुछ

नादिरशाह के आक्रमण मे घनानद जी जीवित थे जैसा कि उनके ही द्वारा कहे गये एक पद से स्पष्ट हो जाता है—

गोप मास श्री कृष्ण पक्ष सुचि ।
सवत्सर अठानवै अति रुचि ॥

नादिरशाह का आक्रमण सम्वत् १७९६ मे हुआ और घनानद १७९८ तक रचना करते रहे । ऊपर के कथन से यह तो स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण मे नहीं हुई वरन् अहमदशाह दुर्रानी या अब्दाली के आक्रमण मे ही हुई ।

श्री शभुप्रसाद बहुगुना रींवानरेश रघुराजसिहके कथन के आधार पर घनानद की मृत्यु न तो नादिरशाह के आक्रमण मे बताते हैं और न अहमद-शाह अब्दाली के आक्रमण मे । उनका खयाल है कि जिस समय औरगजेब अपने भाई दारा से युद्ध कर रहा था उस समय मथुरा निवासियो ने उसका अपमान किया हो जैसा कि रघुराजसिह ने अपनी कविता मे लिखा है । और उसी अपमान का बदला औरगजेब ने अपने शासनकाल मे मथुरा पर आक्र-मण करके तथा वहाँ के मन्दिरो को नष्ट भ्रष्ट करके लिया हो । बहुगुनाजी ने मथुरा पर आक्रमण की घटना को औरगजेब या मुहम्मदकुलीखाँ नामक सरदार के साथ हुये व्यवहार का फल मानकर उसी समय घनानन्द की मृत्यु मानी है—

'जो हो, घटना सन् १६६० के आस पास घट सकती है और इसी मे सभवत घनानद की मृत्यु हुई होगी ।'' बहुगुना जी ने रीवानरेश रघुराजसिह द्वारा वर्णित कथा को केवल अनुमान के सहारे से ही औरगजेब या उसके शासक मुहम्मदकुली खाँ स जोड़कर घनानद की मृत्यु का समय सन् १६६० माना है । किन्तु इस प्रकार के अनुमानो को प्रामाणिक कैसे माना जा सकता है । घनानद के काल को निश्चित करते समय बहुगुनाजी ने नागरीप्रचारिणी सभा की सन् १९[illegible] १९०८-१९ की खोज मे प्राप्त हुई घनानन्द की रचना [illegible] का [illegible] की है । उन्होने लिखा है कि यदि खोज रिपोर्ट म 'प्रीत [illegible] का रचना काल स० १६५८ ठीक है तो घनानन्द के काल का निश्चय

सकते थे। हिन्दी का उस काल का कोई भी कवि ऐसा नहीं कि जिसने नायिका के भेदो की व्याख्या नहीं की।

अनेको प्रकार से नायिकाओ के भेद किये गये। अवस्था के अनुसार नायिकाओ के आठ भेद किये गये। प्रकृति के अनुसार नायिकाओ के तीन भेद किये गये—उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा। नायक के प्रति नायिकाओं के जो सम्बन्ध हैं उनके विचार से भी नायिकाओ के तीन भेद हैं—१—स्वकीया २—परकीया और ३—सामान्या। इसी प्रकार इन के अनेकों भेद प्रभेद होते गये। रीतिकाल का सपूर्ण साहित्य नायिकाओ के महत्व का प्रतिपादन करने में ही लगा रहा। कुछ उदाहरणो से उस काल की प्रवृत्ति का पता लग जायगा। कवियो को इस प्रकार के वर्णनो को अपने स्वामियों की इच्छा के कारण ही करना पड़ता था। स्वकीया नायिका का वर्णन कितना सुन्दर है। उसके सम्पूर्ण रूप को कवि ने प्रस्तुत कर दिखाया है—

जानि कुरगन को मद मेल
लगाइये अञ्जन रग सुचैती।
चार दिना न भये अब हीं
पति कौन चढी चित पै पिक बैनी।
माइके की न मनैं कर देहु
करे ससुरार की सारस वेनी
राजकुमारि बिथा भरिये करिये
किहि कारण भौह तनेनी॥

मुग्धानायिका को भी कवियो ने अनेक रूपो में देखा। मतिराम कवि ने मुग्धा के लक्षणो को अनेक सवैयो मे दिखाया—

तब तो जितही जित ठाडी हुती
अब तो जन वे दिन भौनन के।
तब तो पट ओढन जान नहीं
अब तो दिन सेज बिछौनन के।

बहुत कुछ ठीक हो सकता है। आगे चलकर श्री शभुप्रसाद जी बहुगुना के अनुसार 'प्रीत पावस' १६३० (सन् १५७३ ई०) से सवत् १७१७ (सन् १६६० ई०) तक माना जा सकता है।' लेकिन बहुगुनाजी ने भी यह काल किसी ठोस प्रमाण के आधार पर नहीं दिया इसलिये इसे भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

काल निर्धारण—अहमदशाह अब्दाली (दुर्रानी) के आक्रमण मे मारे जाने के कथन मे अधिक प्रामाणिकता है। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी इसी को माना है। उन्होने इस विषय में जो प्रमाण दिये हैं वह अधिक वैज्ञानिक हैं। इसलिये नागरसमुच्चय में दिया हुआ कविवर जयलाल का निम्नलिखित दोहा अधिक प्रामाणिक है—

अठारह से ऊपरै सवत तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तै कियो पयान॥

इससे स्पष्ट है कि नागरीदास एव घनानन्दजी स० १८१३ मे ब्रज मे मौजूद थे। इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१६१२-१४ मे चाचा हित वृन्दावनदासजी की रचना 'हरि कलावेलि' के विवरण को प्रस्तुत किया है वह भी अधिक तर्क पूर्ण माना जा सकता है। 'हरि कलावेलि' मे दिया हुआ सवत् भी लगभग 'नागर समुच्चय' में दिये हुये काल के समीप ही है। उसमें यवनो का आक्रमण स० १८२३ विक्रमी ही माना है। इतिहास भी इस विषय मे एक मत है कि सवत् १८१३ मे अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ और यह मथुरा तक बढता गया। किन्तु नादिरशाह का आक्रमण दिल्ली तक ही हुआ था। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द की मृत्यु अहमदशाह के आक्रमण मे हुई नादिरशाह के आक्रमण में नहीं। किन्तु अहमदशाह ने दो बार आक्रमण किया था। प्रथम बार उसका आक्रमण स० १८१३ में हुआ और द्वितीय बार उसका आक्रमण स० १८१७ मे हुआ। यह तो नहीं कहा जा सकता कि घनानन्द किस आक्रमण में मारे गये। किन्तु अधिकतर विद्वान् इनकी मृत्यु पिछले आक्रमण में ही मानते हैं। इन आधारो पर घनानद जी के काल को अनुमानतः १८ वीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर १६ वीं शती के प्रथम चरण तक मान सकते हैं।

बावरी विलोकि तेरी आखिन में आई है।
मेरी कटि मेरी भट्ट कौन धौं चुराई
तेरे कुचन चुराई धौ नितम्बन चुराई है॥

इस प्रकार ही ज्ञातयौवना नायिका, नवोढ़ा नायिका को भी प्रत्येक कवि ने अनेक प्रकार से चित्रित किया है। मध्यानायिका और उसके भेद उपभेदो को भी कवियो ने विभिन्न रूप से देखा। नायिका के प्रथम लक्षण प्रस्तुत करके फिर उसका उदाहरण नीचे दिया जाता था—

यथा—॥अथ प्रेम गर्विता लक्षण॥

दोहा—

जाको पति के प्रेम को गर्व होइ चित आइ।
प्रेम गर्विता कहत हैं ताहि सकल कविराय॥

उदाहरण—

आखिन में पुतरी ह्वै रहै
हियरा में हार हो सदै सुख लूटै।
अगन संग बसै अंग राग हो
जीव ले जीवन मूर न लूटे॥
देवजू प्यारे के न्यारे सबै गुण
मोमन मानिक से नहिं छूटे।
और तियान सो तौ बतियाँ करै
मो छतियाँ ते छनो जब छूटै॥

नखशिख वर्णन—इस प्रकार के वर्णनो में हिन्दी का दो सौ वर्ष का साहित्य भरा पडा है। नायिकाओ के भेद उपभेद, उनके अङ्गो का सौन्दर्य आदि ही काव्य के विषय थे। नखशिख वर्णन भी उस काल के कवियो का प्रिय विषय था। ऐसा कोई भी कवि नहीं था जिसने इस विषय को नहीं स्पर्श किया हो। केवल रूप सौंदर्य का चित्रण ही कवियो को पर्याप्त नहीं था। उनको तो नायिका के रोम रोम का वर्णन करने में आनन्द आता था।

नाम निरूपण—

घनानन्द के नाम के विषय मे भी विद्वानो मे अनेक मतभेद हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि आनन्द, घन आनन्द और आनदघन तीन नामो का प्रयोग किया गया है। कुछ विद्वान तो इन सम्पूर्ण नामो को प्रसिद्ध कवि घन आनन्द के ही नाम के लिये प्रयुक्त हुआ बतलाते हैं जबकि कुछ विद्वान् इन तीनो नामो को विभिन्न कवियो के नाम बतलाते हैं। इसके अतिरिक्त घन-आनन्द या आनदघन नाम के दो और व्यक्ति भी हो चुके हैं—एक जैन मता-नुयायी आनदघन थे और द्वितीय नन्दगाँव के निवासी थे। इन दोनो नामो ने भी घन आनद के विषय मे एक प्रकार का भ्रम उत्पन्न कर दिया है।

विद्वानों को अनेको कविताओ मे आनन्द नाम का प्रयोग मिला है। कुछ तो उसको आनद घन और घन-आनद का सक्षिप्त रूप कविता मे प्रयोग करने की सरलता के कारण बतलाते हैं किंतु कुछ लोगो का विचार है कि आनन्द कवि घन-आनन्द से भिन्न हैं।

डा० हीरालाल ने 'आनन्द' नाम को घनानन्द का ही काल्पनिक नाम माना है।

डा० ग्रियर्सन ने भी आनन्द नाम को आनदघन का ही पर्याय माना है। उन्होने अपनी पुस्तक 'दी मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान' में लिखा है कि आनन्द और आनन्दघन एक ही कवि हैं।

बाबू श्यामसुन्दरदास ने आनन्द और आनन्दघन को पृथक कवि माना है। उन्होने निश्चयात्मक रूप मे इनकी भिन्नता को स्वीकार किया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे भी इन दोनो कवियो की भिन्नता को स्वीकार किया गया है। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट की चर्चा करके आनन्द कवि को घनआनद से पृथक ही माना है—'बहुत दिनो तक तो इसका पता ही न था कि आनद कौन हैं और कहां के रहने वाले हैं और इनका समय क्या है? इन्होंने काम-[illegible] पर [illegible] लिखा है जो कि इतनी चली कि इसके अनेक रूप हो

ाह्य सौन्दर्य की प्रधानता—

इस काल के कवियो की मुख्य प्रवृत्ति थी कि वह बाह्य-सौंदर्य को ही अधिक महत्व देते थे। इस काल के कवियो की दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य की उन गुत्थियों की ओर नहीं गई जिनको सूर और तुलसी के काव्य मे अधिक महत्व दिया गया। इसका मूल कारण यही था कि यह कवि रसिक थे और इनको नारी के बाह्य शरीर से ही अधिक मोह था। परिणाम यह हुआ कि उन्होने अपने काव्य को भी बाह्य उपकरणों से ही सुसज्जित किया। भाव को प्रमुख स्थान बहुत कम मात्रा मे मिला। भाषा, अलकार तथा नायिकाओ के भेदो को ही कवियो ने अधिक महत्व दिया। उन्होने हृदय की सूक्ष्म वृत्तियो के सौन्दर्य को इन सबके सम्मुख विस्मृत कर दिया। यह बात दूसरी है कि कहीं पर अनायास ही भावराशि आ गई हो। इस प्रकार के भी अनेकों स्थल बिहारी, मतिराम, देव आदि कवियो मे मिल जाते हैं। कवियो को अलकारो के प्रयोग कविता मे आवश्यक जान पडते थे। महाकवि केशव का यह दोहा सिद्धान्तवाक्य हो रहा था—

जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न राजहीं कविता बनिता मित्त॥

अभी तक कविता की आत्मा भाव ही थे और उन्हीं को पूर्व के कवियो ने अधिक महत्व दिया था। किंतु रीतिकाल में आकर अलङ्कारों को ही कविता का सौन्दर्य कहा गया। भाषा मे समासपद्धति को अपनाकर भाषा सौन्दर्य का समावेश करना आवश्यक हो गया। पद्माकर जैसे अनुप्रास भक्त और सेनापति जैसे श्लेष अलङ्कार के प्रशसको ने काव्य के भावपक्ष को सर्वथा भुला देया। इस प्रकार रीतिकालीन काव्य मे चमत्कार का योग होने से फारसी और उर्दू के समान वाहवाही प्राप्त करने की शक्ति आ गई। कविता का मूलाधार भाव अब अप्रधान रूप प्राप्त करके कभी-कभी ही दिखाई देता था। अब काव्य अन्त.चेतना प्रदान करने वाला न होकर केवल बुद्धि का चमत्कार प्रदर्शित करने वाला ही रह गया था। उपर्युक्त कथन से यह आशय नहीं लेना चाहिए कि गीतिकालीन काव्य मे भावपूर्ण स्थल थे ही नहीं। उस काल

रीतिकाल और घनानन्द

रीतिकाल में कृष्ण और राधा का रूप—घनानन्द का प्रादुर्भाव जिस नय हुआ था उस समय हिन्दी-साहित्य का वातावरण शृङ्गार से आप्लावित ा। सर्वत्र शृंगार की धारा में ही कवि लोग डुबकी लगाकर अपने कवि-धर्म ो सफल बना रहे थे। भक्ति, योग और अन्य उपासना पद्धतियों का जोर समाप्त हो चुका था। अब न तुलसी की राम-काव्य की धारा ही दिखाई देती थी और न कबीर, दादू आदि सन्तों की बानी का ही स्वर सुनाई देता था, न सूर के माखनचोर और पैर मे पैंजनी बाँधकर नाचने वाले कृष्ण का बाल-रूप ही दृष्टिगोचर होता था। कृष्ण का जो रूप मिलता था वह शृंगार मे लथपथ और भोग-विलास में रंगा एक ऐसा रूप था जो तात्कालिक कुत्सित विचारधारा के किसी भी युवक का रूप हो सकता था। अब कृष्ण का पतित-पावन, दुष्ट सहारक और ललितकलाओ के प्रचारक का रूप नहीं था वरन् एक विलासी और लम्पट नायक के रूप को ही कृष्ण नाम से सम्बोधित किया जाने लगा था। राधा भी कृष्ण के समान ही अपने पद से च्युत हो चुकी थीं। उनको भी साधारण नायिका का रूप देकर उनके उस प्रेमतत्व की अनुभूति को समाप्त कर दिया गया था जो शताब्दियो से हिंदू जनता को एक गम्भीर भाव-धारा में निमज्जित करती चली आ रही थी। घनानन्द का रचनाकाल ऐसे समय में हुआ जिस समय साहित्य मे अनेको धारायें शृङ्गार के सागर को भरने का प्रयत्न कर रहीं थीं। उन सब धाराओं के मूल मे शृंगार भावना की ही प्रधानता थी।

तात्कालिक मुख्य प्रवृत्तियाँ—उस समय प्रधान रूप से काव्य-शास्त्र के अनेकों भेद-प्रभेदो की नाना प्रकार से व्याख्या हो रही थी। रस, अलङ्कार, ध्वनि आदि को ही काव्य मे प्रधान रूपसे स्वीकार कर लिया गया। नायिका

घन की चर्चा की है। "आनन्द-घन, ग्रन्थ आनन्द-घन बहत्तरी-स्तवावली रचना काल १७०५, विवरण—यशोविजय के सम-सामयिक थे।"

उपर्युक्त विवरण के अनुसार सुजान प्रेमी घन-आनन्द और इसके अतिरिक्त जैन मर्मी आनन्द घन दो भिन्न कवि थे।

श्री शभुप्रसाद बहुगुना ने भी अपनी पुस्तक 'घन-आनन्द' मे जैनमर्मी आनन्द-घन और वृन्दावन निवासी कृष्ण भक्त आनन्द घन की भिन्नता को स्वीकार किया है—"लाभ विजय–(सन् १६१५–१६७५ ई०) अथवा जैन मर्मी आनन्द-घन को राधाकृष्ण प्रेमी आनन्द घन अथवा घनानन्द से मिला देना उचित नहीं। वे नितान्त भिन्न व्यक्ति हैं। विचार-धाराओ मे सम्पर्क-विनिमय से साम्य आ जाना एक मामूली सी बात है।"

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी इन दोनो—जैनमर्मी आनन्द-घन और वृन्दावनवासी घनानन्द को अलग-अलग मानते हैं। अपनी पुस्तक 'घन-आनन्द' मे पृष्ठ ५५ पर वह इस तथ्य पर इस प्रकार विचार करते हैं—"जैन 'आनन्दघन' (महात्मा लाभानद जी) का समय भी १७ वी शती का उतरार्द्ध है। उनकी चौबीसी की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समय सुन्दर (स० १६७२), जिन राज सूरि (स० १६७८), सकलचन्द्र (स० १६४०) और प्रीतिविमल (स० १६७१) जिन स्तवनादि ग्रन्थो मे आये चरणो से मिलती हैं . . इससे १७०० के आस पास यह अवश्य थे। इधर वृन्दावनवासी आनन्दघनजी को 'छप्पन भोग चन्द्रिका' मे कृष्णगढ के राज्य कवि जयलाल ने नागरीदास जी का सम-सामयिक समझा है और उनके सतसग की चर्चा की है।"

पीछे राधाकृष्णदास जी के मत को प्रस्तुत करते हुए हम 'नागर समुच्चय' के कुछ उदाहरण दे चुके हैं। और उनमे नागरीदास और घन आनन्द को सम सामयिक ही पाना है। नागरीदासजी का कविता काल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सवत् १७८० से सवत् १८१६ तक माना है (हिन्दी साहित्य का इतिहास) इससे स्पष्ट है कि जैनमर्मी आनन्द घन और वृन्दावन वासी आनन्द-घन के समय मे भी १०० वर्ष का अन्तर है।

इन दोनो आनन्द घन के अतिरिक्त एक तीसरे आनन्द घन नन्दगाँव के

रा बँधी हुई नालियो में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के
से गोचर और अगोचर दृश्य रस-सिक्त होकर सामने आने से रह गये।
ी बात यह हुई कि कवियो की व्यक्तिगत विशेषताओ की अभिव्यक्ति का
सर बहुत कम रह गया ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि रीतिकालीन कविता मे अनेक
त्ता नहीं थी । वह केवल कुछ बधी हुई परिपाटियो पर ही चलने लगी ।
विता की सफलता इसी में थी कि वह पिंगल आदि के लक्षणो से युक्त हो
और उसमें कोई भी ऐसा दोष न हो जो कि काव्य-शास्त्र के नियमो के प्रति-
कूल हों । यही कारण था जिससे कवि लोग अपनी कविता की सफलता अपने
ही मुख से घोषित करने लगे—

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं,
बुध कवि के जो उपकण्ठ ही बसति है ।
जोए पद मन कों हरष उपजावति है,
तजै को कनरसै जो छन्द सरसति है ॥
अच्छर है विशद करति उषै आप सम,
जातैं जगत की जडताऊ बिसरति है ।
मानो छवि ताकी उदवत सविता की सेना—
पति कवि ताकी कविताई विलसति है ॥

ऊपर का कवित्त सेनापति कवि का है । कवि अपने कला-कौशल पर
स्वय मुग्ध है । किन्तु यदि उसके इस कवित्त को देखा जाय तो इसमे केवल
ष का चमत्कार है, वह भी बड़ी खींचतान के साथ । अन्यथा कवि किसी
प्रकार के भाव को इस कवित्त मे नहीं दिखा सका । लेकिन फिर भी सेना-
ति कवि का स्थान रीतिकालीन कवियो मे अपनी विशेषता रखता है
योकि उन्होने रीति में बद्ध होकर ही कविता लिखी थी और उस काल की
जनता कविता के बाह्य आवरणो की सजावट पर ही मुग्ध थी इसलिए सेना-
पति भी रीतिकाल के प्रमुख कवियो के अन्तर्गत ही माने गये ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि घनानन्द के काल

कवि घनानन्द एक विरही कवि हैं। उनका काव्य उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है। सुजान के प्रेम ने कवि की अन्तरात्मा को भर दिया जो वियोग रूपी दुर्दिन के आने पर उसके हृदय से प्रवाहित हो चला।

(व) विरह में प्रकृति का उद्दीप्तकारी रूप—प्रकृति का रूप सर्वदा सुख और आनन्द प्रदायक होता है किन्तु विरह की दशा में प्रकृति विरहिणी को अनेक भयकर और उग्र रूप दिखाती है। पलाश के वन विरहिणी को वियोग मे अङ्गार के समान प्रतीत होते हैं। वर्षा की पुरवाई वायु से उसके शरीर में विरहाग्नि और भी तीव्र होती है। बादल जो कि सयोगावस्था में आनन्द की वर्षा करते थे अब उनको देखकर वियोगिनी बहक उठती है। उसका गला भर आता है। चपला की चमक भी उसकी दशा को अत्यन्त ही दयनीय कर देती है। वर्षा के पुष्पो की सुगध भी वियोगिनी के दु.ख को अधिक तीव्र करती है—

लहक लहक आवै ज्यौ ज्यो पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौ त्यो तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोके जिय
गहकि गहकि गहवरनि हिये मचै।
चहकि चहकि डारै चपला चखन चाहै
कैसे घन-आनन्द सुजान बिन ज्यो बचै।
महकि महकि मारै पावस प्रसून वाय
त्रासनि उसास दैया कौ लौ रहियै अचै।

कमलो को देख सयोगिनी आनन्द मे निमग्न हो जाती थी किन्तु वियोगिनी के लिए सुखदाई वस्तुये ही विष का काम कर रही हैं—

विकच नलिन लखे सकुच मलिन होति
ऐसी कछु आखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ समीर आये बहकि बहकि जाय
राग भरे हिय में विराग-मुरझनि है॥

कोकिल की मधुर बोली भी वियोगिनी को वियोग मे दुःखवर्द्धक प्रतीत

कि कवि ने अपने जीवन मे जो प्रेम किया था उसमे उसे सफलता नहीं मिली। इसी कारण उसकी अन्तरात्मा की पुकार उस वियोग से व्यथित होकर उच्चकोटि की भाव व्यजना करने मे समर्थ हुई।

यह अभी तक की खोजो से स्पष्ट नहीं हुआ कि घनानन्द को सुजान भी प्रेम करती थी या नही। इसके अतिरिक्त यह भी पूर्णरूप से ज्ञात नही हुआ कि घनानन्द सुजान को स्वच्छन्द रूप से प्रेम करते थे अथवा लोक भय से गुप्त रूप से ही प्यार करते थे। अब अवश्य कुछ इस प्रकार की कवितायें मिली हैं जिनके आधार पर इस तथ्य पर कुछ विचार किया जा सकता है और किसी प्रकार इस भ्रम को निवारण करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

सुजान की कविता—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को आजमगढ राज्य मे प्राचीन कवियो का एक सग्रह मिला है। उस सग्रह मे उनको ग्यारह कवित्त मिले हैं जिनका शीर्षक है 'सुजान के कवित्त'। उन कवित्तो को यदि प्रसिद्ध नर्त्तकी 'सुजान' के मान लिये जाये तो यह विवाद सरल हो जाता है कि सुजान घनानन्द को प्रेम करती थी या नही। प्रथम कवित्त की परीक्षा कीजिये—

> 'मन मेरौ तुमै यह लागि चुक्यौ अब कोऊ कछू किन कैबो करो।
> वह मूरति मोहिनी रग भरी सो दया करि चित्त दिखैबो करौ॥
> यह बीनती मेरी सुजान कहै चित दे इतनी सुनि लैबो करौ।
> कबहू जिय आवे तबे सुनि प्यारे दया करि क इत ऐबौ करौ॥

उपर्युक्त कवित्त यदि सुजान का है तो इसमे कोई सन्देह नहीं कि वह भी घनानन्द को उतना ही प्रेम करती थी जितना कि वे उसको करते थे। प्रथम पक्ति मे प्रेम की तीव्रता इतनी स्पष्ट है कि सुजान ने लोक की भी परवाह नहीं की। वह तो अपने मन को घनानन्द से लगा चुकी थी। इसमे सदेह नहीं कि सुजान की कविता कृष्ण के विषय मे भी हो सकती है। किन्तु घनानन्द के प्रेमातिरेक मे निमग्न काव्य को देखकर ऐसा ही आभास होता है कि दोनो परस्पर प्रेम बन्धन मे बधे थे। किन्तु सुजान राज दरबार की नर्त्तकी थी और घनानन्द भी राजकीय कर्मचारी थे इसलिये अपने प्रेम की घुटन को ही अनुभव

सखि मोर पिया
- अजहु न आओल कुलिस हिया ।

सयोग मे प्रकृति के जो उपकरण थे वह अब भी मौजूद हैं किन्तु उस समय उसमे जो सुख का सार निहित था वह अब वियोग मे न जाने कहाँ चला गया । जमुना भी वही है, कु जा का समूह भी वही है, उसी प्रकार ऋतुये भी आती हैं, चन्द्रमा भी कोई नवीन नहीं, वही मन है और उस मन मे वही अभिलाषाये भी सचित हैं । मुरली की वही ध्वनि आज तक व्याप्त है । किन्तु कृष्ण न जाने कहाँ छिपे हुये हं और उनकी अनुपस्थिति के कारण ही वियोगिनी की यह दशा हो गई है । इस दशा को किससे कहे कुछ भी लाभ होते नहीं दिखलाई देता—

वही जमुना है वही वन वेई कु ज पु ज
वही ऋतु वही चन्द और सब वहियै ।
वेई हम वही वेई अभिलाख लाख,
वही धुनि मुरली की अजौं रमि रहियै ।

वियोग की दशा को उद्दीप्त करने मे प्रकृति का जो व्यापक रूप महाकवि सूर ने देखा उस प्रकार की व्यापकता तो महाकवि घनानद मे नहीं किन्तु फिर भी जितना प्रकृति चित्रण का रूप उनके काव्य मे मिलता है वह रीति-कालीन कवियो की तुलना मे अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का है । इसमे कोई सदेह नही कि उनके प्रकृति-चित्रण मे भी उन्हीं बातो को स्थान दिया गया जो परम्परा-भुक्त थी लेकिन फिर भी प्रकृति को इतना व्यापक रूप रीतिकाल के किसी भी कवि ने नहीं दिया जितना कि इस रीतिमुक्त कवि ने दिया ।

आलकारिक रूप—प्रकृति को आलङ्कारिक रूप मे देखना भी सस्कृत साहित्य के प्रारम्भ से ही चला आ रहा था । प्रकृति के उपकरणो के साथ ायक और नायिकाओ के अङ्ग-प्रत्यङ्गो की समानता अथवा कभी प्रकृति के पकरणो को नायिका के अङ्गो के सन्मुख हेय सिद्ध करने की आलङ्कारिक णाली बहुत ही प्राचीन है और इसी के आधार पर उपमा और व्यतिरेक ादि अलङ्कारो को काव्य में प्रधानता दी गई । इस प्रकार के वर्णन सस्कृत

एक नवीन दिशा की ओर मोडा उसी प्रकार प्रकृति के चित्रण मे भी उन्होने प्राचीन कवियों की तरह सश्लिष्ट प्रकृति चित्रण की ओर भी ध्यान दिया। प्रकृति का जितना प्रेम इनकी कविताओं में है उतना उस काल के बहुत कम कवियो में है।

प्रकृति का सन्देश वाहक रूप—जिस प्रकार कालिदास के मेघ ने यक्ष का सन्देश उसकी प्रियतमा को दिया था उसी प्रकार घनानन्द ने पवन और मेघ दोनों के द्वारा विरहिणी की दशा का सदेश उसके प्रिय तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है—

'घन आनन्द जीवन दायक हौ कछु मेरीयौ पीर हियै परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान कौं लै बरसौ॥

उसी प्रकार वियोगिनी के द्वारा पवन से भी प्रार्थना की जाती है कि वह कृपा करके उसका सन्देश उसके प्रियतम तक पहुँचा दे। उस निष्ठुर ने यदि उसे भुला दिया है तो पवन इतनी कृपा ही कर दे कि उसके प्रियतम के पैरों की धूल ही उसके समीप उडा कर ले आवे। इस प्रकार घन आनन्द ने प्रकृति को भी सयोग वियोग दोनो पक्ष मे अनेक रङ्गो मे देखा है। उनका प्रकृति चित्रण इस बात का परिचायक है कि कवि को भावो के रङ्गो को प्रकृति की पृष्ठभूमि देकर रङ्गने में ही आनन्द का अनुभव होता था। प्रकृति चित्रण में घनानन्द ने कृष्ण भक्तों का अनुकरण करके गिरि पूजन, अनुभव चन्द्रिका आदि शीर्षको के अन्तर्गत अपनी रुचि का अच्छा परिचय दिया है। रीतिबद्ध कवियों के समान उन्होने परम्पराभुक्त प्रकृति-वर्णन को ही नहीं अपनाया। षट्ऋतु वर्णन तथा बारहमासा रीतिकालीन कवियो में प्रकृति चित्रण के रूप मे प्रस्तुत किया जाता था। घनानन्द ने जिस प्रकार काव्य मे अन्तर्वृत्तियों के चित्रण को अपनाया और एक स्वतत्र कवि के रूप मे अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया। उसी प्रकार प्रकृति वर्णन मे उन्होने रीतिबद्ध कवियो का अनुकरण नहीं किया। उनका प्रकृति चित्रण अपने काल के कवियो से अधिक व्यापक था।

आदि शब्दो से व्यक्त किया है।" आगे चलकर फिर कहते हैं—"यदि सुजा
कोई नारी थी भी तो सम्भवत. रासलीला की नारी (राधा) की स्मृति मात्र
जो परमात्मा का प्रेम पूर्ण रहस्यात्मक प्रतीक बन गई है। नख-शिख, नृत्य
संगीत का वर्णन सुजान के विषय मे है वह रासलीला की राधा का प्रभा
और उसकी मानसिक कल्पनाओ मे उत्पन्न चेतना का वर्णन है।"

किसी भी भावना के पल्लवित होने का कोई आधार अवश्य होता है
जब तक सुजान के विषय मे पूर्व आधार नही होता तब तक घनानन्द न त
उसको राधा के रूप मे ही स्वीकार करते और न कृष्ण के रूप मे ही
राधा और कृष्ण को भी सुजान नाम किसी कारण वश ही दे सकते थे
सुजान नाम को अपने काव्य मे स्थान २ पर व्यवहृत करने से यह स्पष्ट है f
घनानन्द ने किसी प्रेमिका के नाम को ही कृष्ण और राधा के रूप मे परि
नित करके अपने प्रेम को अमरत्व देने का प्रयत्न किया है। बिना किस
गहरी चोट के इतनी उच्च कोटि की अनुभूति होना असम्भव है।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किसी अन्य कवि के उद्धरण अपनी पुस्तक
आरम्भ मे दिये है। उनमे घनानन्द को सुजान से प्रेम करने के कारण बहु
बुरा भला कहा है। इससे भी स्पष्ट है कि सुजान के प्रेम के विषय मे कवि
को बहुत कुछ सुनना पड़ा था। वह कवि घनानन्द की अत्यन्त ही कटु आलो
चना करता है। कभी वह उनको वश्या का दास बतलाता है। कभी वह उनक
कविता को दोषपूर्ण कहता है तो कभी राम के नाम को छोडने वाला औ
वेश्या का भक्त कहता है। उसे यहा तक चैन नही मिला वह कवि को गुन्ड
तक कहने से भी नही चूकता। घनानन्द से उपर्युक्त कवि इतना चिढ़ा है f
उन्होंने सीधी गालिया ही उनको दी है—

> 'करै गुरनिन्दा यह तुरकिनी नन्दा महा
> निरधनी सदा ध्यान पातुर औ तान है
> घन को चुरावे ताको मनमन लावे हुर
> कविता बनावे गावे गिरौली की तान है।
> [illegible] यह [illegible] नाम [illegible] पापी, विप्र

विरह की इस प्रकार की उक्तियो में ही बोधा पर फारसी काव्य-धारा का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर' ने बोधा आदि के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रदर्शित किया है—'रीतिकाल मे अगर घनानन्द को लेकर एक अलग परिवार की कल्पना की जाय तो उनके सबसे अधिक विश्वासी बोधा होगे तथा इस परिवार में आलम, ठाकुर, रसखान और मुबारक को भी नदजीक की जगह मिल जायेगी । बोधा घनानद के ही गुटका सस्करण से लगते हैं । प्रेम का वही नशा, विरह की वही बेचैनी, भावुकता की वही लहर और निराशा में तड़प कर जान दे देने की वही चाह । बल्कि जान दे देने का मजमून घनानद में बहुत थोड़ा सा है, लेकिन बोधा इस मजमून के बहुत कायल हैं । बोधा का व्यक्तित्व एक भावुक प्रेमी का व्यक्तित्व है, जिसे प्रेम से निराशा हुई हैं, जिसके मन की आग मन मे ही जल रही है और उसे कही भी वह आदमी नहीं मिलता जिसके सामने अपनी वेदना कह कर वह अपने जी को हल्का करे ।'

ठाकुर कवि की विशेषता—कवि ठाकुर ने गोपियो के द्वारा प्रेम की दृढ़ता को स्पष्ट किया है—

धिक कान जो दूसरी बात सुने, अब एक ही रङ्ग रहो मिलि डोरों ।
दूसरो नाम कुजात कढ़ें रसना जो कहै तो हलाहल बोरों ॥
ठाकुर यों कहती ब्रजबाल सु ह्यॉ वनितान को भाव है भोरो ।
ऊधो जी वे ॲखियॉ जरि जाये जो सावरो छाडि तकै तन गोरो ॥'

प्रेमभाव की जो स्वाभाविक एव सरल अभिव्यक्ति ठाकुर में हुई है वह इन अन्य कवियों में नहीं । भावो को इस प्रकार रख दिया है मानो किसी साधारण पढे लिखे आदमी के उद्‌गार हों । लेकिन भावो की सत्यता बरबस ही मन पर अधिकार जमा लेती है । महाकवि घनानन्द मे भी भावो की सरल और स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिलती है किंतु उनका कला-पक्ष अधिक प्रौढ़ होने के कारण कहीं २ उनका काव्य क्लिष्ट भी है जिसे सामान्य लोग समझने में कठिनाई का सामना करते हैं । ठाकुर कवि के भाव अपने सरल रूप की विशेषता के कारण सामान्य-जनता द्वारा भी सुगमता से हृदयगम किये जा सकते हैं । कवि ठाकुर ने प्रेम के स्वच्छन्द रूप को ही देखा । वह अपने

लेकर चली। यह कहें तो अनुचित न होगा कि मांसल प्रेम का जो रूप हिंदी में आया वह मातामही और माँ की विरासत के फलस्वरूप ही मिला।

कालिदास जैसे महाकवि ने स्थूल शृंगार की उत्कृष्टता को भी दिखाया। यक्ष का अनुभूति प्रधान प्रेम भी शारीरिक प्रेम के कारण ही हुआ था। एक कालिदास ही नहीं संस्कृत के अनेक कवियो ने प्रेम का आलम्बन नारी के अंगो को ही रखा। उनके काव्य मे नारी के अंगो के सौन्दर्य के प्रति एक उत्कट ललक है। सौन्दर्य की देवी यक्षिणी की स्मृति उस यक्ष को इसलिये होती है कि वह उसके साहचर्य्य मे एक लम्बे समय से रह रहा था। अब उसकी वह प्रिया जो इतनी रूपवती है न जाने कैसे अपने दिन व्यतीत करती होगी। यक्ष उसके शरीर का चित्र मेघ के सन्मुख रखकर अपनी उस ललक को प्रकट करता है जो उसके हृदय में अपनी प्रिया के शारीरिक सौन्दर्य के प्रति है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकित हरिणी प्रेक्षण निम्नभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिपिये सृष्टिराद्येवधातुः॥

हिन्दी के आदिकाल में विद्यापति जैसे कवि को प्रारम्भ में शारीरिक सौंदर्य के प्रति ही आकर्षण होता है किन्तु वियोग की अवस्था मे कवि की अनुभूति उस शारीरिक आकर्षण को ही आंतरिक प्रेम में परिवर्तित कर देती है। जो कवि एक दिन यौवन के प्रति इतना आकर्षित हुआ था कि उसके नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हो गये थे और अनायास ही वह अपने आकर्षण को इस प्रकार व्यक्त करने लगा था—

'कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहिअ न पारेब छओ अनुपम एक ठामा॥'

वही एक दिन भावुकता से ओत-प्रोत होकर प्रेम के आन्तरिक प्रभाव को देखने लगता है—

सखि मोर प्रिया।
अजहु न आओल कुलिस हिया॥

अपने भौतिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम के रूप मे परिवर्तित कर दिया । घनानन्द के काव्य से भी स्पष्ट है कि उनका प्रेम अत्यन्त गूढ है । किसी कारण उस प्रेम मे व्यवधान पड़ गया जिसकी कसक उनके काव्य की अनेको पक्तियों मे स्पष्ट रूप से परलक्षित होती है । कवि अनेको स्थलो पर अपने प्रेम के अटूट सबध के विषय मे कहता है —

'मन भावन मीत सुजान सो नातौ लग्यौ तनकौ न तऊ टुटि है'

पहले प्रेम से पगी बाते की । लेकिन अब विधाता ने वियोग की दीवार का खड़ा करके उन दोनो प्रेमियो को अलग कर दिया । लेकिन मन तो प्रेम म इतना रजित है कि वह कभी सुजान को नही भूल सकता ।

सुजान कवि के काव्य की प्रेरणा ही है । सम्पूर्ण-कविताओ मे उसी के प्रेम को कवि ने बड़े ही मार्मिक ढग से व्यजित करके अपने हृदय की समस्त गहराइया का पाठको के सम्मुख रखने का सफल प्रयत्न किया है । कवि की आत्मा सुजान के प्रेम मे निमग्न होकर उसको ईश्वरीय रूप देने मे समर्थ हुई है ।

घनानंद की काव्य कृतियाँ :—

घनानन्द की कृतियो की खोज होने पर उनके ग्रन्थ और कृतिया अनुसन्धानकर्ताओं को उपलब्ध हुए है । लेकिन उनके विषय मे भी विद्वानो के मतो म विभिन्नता ही है । कुछ विद्वान उनके बहुत से ग्रन्थो को उनके लिखे नही बतलाते । उनका कथन है कि बाद म अन्य कविता प्रेमियो ने अन्य कवियो की रचनाओ को भी उन्ही के नाम से जोड़ दिया । ऐसा करने का मुख्य कारण यह था कि घनानन्द की कविता कृष्ण विषयक थी और उन्होने अपनी कविताओ म अनेक सम्प्रदायो के मूल सिद्धान्तो का निर्वाह उसी प्रकार किया है जिस प्रकार सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो ने वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रतिपादन अपने पदो म किया था । यही कारण था कि घनानद के काव्य को सभी सम्प्रदायो के भक्तो ने अपना लिया और इस प्रकार उनको रचनाओं मे चार चाद लग गये । गोकुल की महिमा का गुण गान, यमुना के

किंतु भारतीय प्रेम में माधुर्य भाव था जो एक कोमल रूप को लेकर चला था। जायसी की नागमती की आन्तरिक दशा इसलिये बिगडी हुई है कि उसे प्रियतम के द्वारा शारीरिक सुख नहीं मिल रहा। वह अपने उद्‌गारों को इस प्रकार स्पष्ट करती है—

'पदमावति सौं कहेउ विहगम। कत लुभाय रही करि सगम।'

नागमती को इसी बात का दुःख है कि पद्‌मावती उसके प्रिय के साथ समागम करे और वह इस प्रकार बेचैनी मे अपना जीवन व्यतीत करे। सूफियों का प्रेम अनुभूति प्रधान प्रेम के अन्तर्गत है। उन्होने उसको समासोक्ति के द्वारा ईश्वरोन्मुखी बनाकर उसकी शारीरिकता को सयत करने का भी प्रयत्न किया है।

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल अधिकतर नारी के शारीरिक सौन्दर्य को ओर ही आकर्षित था इसलिए उसकाल के काव्य मे जिस प्रेम का रूप दिखाई देता है वह उदात्त प्रेम नहीं वरन् स्थूल प्रेम ही है। बिहारी, मतिराम, देव, पदमाकर आदि सभी कवि, स्थूल प्रेम को ही लेकर चले जो केवल वासनाओं की तृप्ति तक ही सीमित था। इस काल के प्रेम में चातक की सी अनन्यता नहीं। प्रेम को उद्दीप्त करने के लिये ठोढी का गड्ढा ही पर्याप्त था। उसीको देखकर नायक प्रेयसी के लावण्य मे डूब जाता था। पद्‌माकर की नायिका का 'नैन नचाय' के यह कहना ही प्रेम को उदीप्त कर सकता था—

'लला फेरि आइयो खेलन होरी'

घनानन्द का शुद्ध प्रेम—

महाकवि घनानन्द भी रीतिकाल में ही हुए थे और उनको भी सुजान के सौंदर्य के प्रति ही प्रथम आकर्षण हुआ था। लेकिन उन्होंने अपने उस प्रेम को सयत रखा क्योंकि उनको प्रतीत था कि दरबार की नर्त्तकी से मीरमुन्शी का प्रेम होना सभव नहीं। यही कारण था कि वह अपने प्रेम को अपने हृदय में रखकर उसकी पीर को अन्दर अनुभव करने लगे। किंतु प्रेम क्या छिपा है ? उनको उसी प्रेम के कारण अपनी नौकरी से हाथ धोने पड़े और जिसको

'घन आनद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एकते दूसरौ आँक नही ।
तुम कौन सी पाटी पढे हौ लला मन लेत हौ देत छटाँक नहीं ॥

यदि प्रियतम का प्रेम उसे नही मिलेगा तब भी वह प्रेयसी अपने प्रेम में दृढ ही रहेगी । यदि उसकी दशा बिगडती जायेगी तब भी उसे कोई चिन्ता नहीं । यदि अन्य कोई पूछेगा तो उसका उत्तर भी वह अपने प्रिय से पूछकर ही देगी—

'यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौ ।
जिय नेकु विचारिके देहु बताय हहा पिय ! दूरिते पाँय गहौ ॥'

तुलसी ने भी प्रेम के अनन्य रूप को ही अधिक महत्व दिया । उन्होंने अनेक स्थानो पर प्रेम की अनन्यता को प्रदर्शित किया है—

एक भरोसौ एक बल, एक आस विश्वास ।
स्वाति बूँद घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

प्रेम की इसी अनन्यता के कारण रसखान भी अपना नाम अमर कर ये । जिस अनन्यता के साथ इस मुसलमान गायक ने अपने प्रिय को प्यार या सम्भवत. उसी का प्रभाव घनानद पर भी पड़ा । रसखान ने प्रेम की न्यता के महत्व का बड़े जोरदार शब्दो में प्रतिपादन किया—

अति सूछम कोमल अतिहि अति पतरो अतिदूर ।
प्रेम कठिन सबते सदा, नित इक रस भरपूर ॥
इक अङ्गी बिनु कारनहि इकरस सदा समान ।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम महान
डरै सदा, चाहे न कछु, सहै सबै जो होय
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानौ सोय ।
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, कठिन प्रेम की फाँस ।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसास ॥

घनानद का प्रेम मूलत. इसी प्रकार का था । उनके काव्य में प्रेयसी जीवन भर तड़पने को तैयार है किंतु फिर भी उसे प्रियतम की ओर से कोई

कवि हैं।

श्री शम्भुप्रसाद जी बहुगुना ने अपनी पुस्तक 'घन-आनन्द' में घनानन्द कवि द्वारा लिखित निम्नलिखित पुस्तकें मानी हैं —

(१) सुजान सागर, घनानन्द कवित्त, रस केलि वल्ली, सुजान हित।

(२) श्री कृपा कंद ([illegible]) निबन्ध

(३) इश्कलता

(४) सुजान राग माला

(५) प्रीति-पावस।

(६) वियोग बेली।

(७) नेहसागर।

(८) विरह लीला (वियोग बेली)

(९) प्रेम पत्रिका।

(१०) बानी।

(११) छतरपुर का भारी ग्रन्थ जिसका उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने किया है किन्तु दरबार लायब्रेरी उसका भेद नहीं देती। साधारण रीति से जिसका अभाव उक्त पुस्तकालय मे (वहाँ के लायब्रेरियन द्वारा) बतलाया जाता है

(१२) गेय पद।

ऊपर घनानद की कृतियो के जो नाम दिये हैं वह कवि द्वारा सम्भवत नही दिये गए वरन् उनके पश्चात् उनकी कविता के प्रेमियो ने उनको सग्रह कर के इस प्रकार के नाम दे दिए। यही कारण है कि इन रचनाओ मे बहुत से कवित्त और सवैये इस प्रकार के हैं जो प्रत्येक सग्रह मे मिलते हैं।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घन आनन्द' मे घनानद की ४० कृतियो को सग्रहीत किया है। उनका आधार घनानद की कृतियो का छतरपुर वाला सग्रह और वृन्दावन, वाला सग्रह दोनो ही हैं। इस प्रकार जो घनानन्द की पुस्तके अब तक ज्ञात हुई हैं वह निम्नलिखित हैं—

१—सुजान हित
२—कृपाकद निबन्ध
३—वियोग वेलि
५—कृष्ण कौमुदी
६—धाम चमत्कार
७—प्रियाप्रसाद

घनानन्द की भक्ति एवं सम्प्रदाय

विभिन्न मत—

महाकवि घनानन्द के मत एव सम्प्रदाय के विषय मे अभी तक अधिक खोज नहीं हुई। प्रारम्भ मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके सम्प्रदाय के विषय मे अपने 'हिंदी साहित्य' के इतिहास में लिखा था—'इस पर इनको विराग उत्पन्न हो गया और ये वृन्दावन जाकर निबार्क-सम्प्रदाय के वैष्णव हो गये और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से रहने लगे।' उन्होने अपने इस कथन के आधार मे घनानन्द का एक कवित्त भी उद्धृत किया है जिसमे उनका वृन्दावन भूमि के प्रति जो प्रेम था उसकी झाँकी मिलती है—

गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो,
सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहिरे।
अद्भुत अभूत महि मडन परे ते परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यो न ताहि लहिरे॥
आनन्द को घन छायो रहत निरन्तर ही
सरस सुदेय सो, पपीहा पन बहिरे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै परि रहि रे॥

किन्तु अपने उपर्युक्त कथन के पश्चात शुक्ल जी ने वहीं पर आगे के ष्ठ मे इस प्रकार कहा है—

'इन्होने अपनी कविताओ मे बराबर सुजान को सम्बोधन किया है जिन्हे शृङ्गार मे नायक के लिये और भक्ति भाव में कृष्ण भगवान के लिये प्रयुक्त मानना चाहिये। कहते हैं कि इन्हें अपनी पूर्व प्रेयसी सुजान का नाम इतना

किसी उपासना में दृढ़ और मग्न हो गये।' यह उपासना क्या थी इसका पता उनको ठीक नहीं लगा।

श्री शंभुप्रसाद बहुगुना ने घनानद की भक्ति-भावना को एक मोड़ देकर अपना नया दृष्टिकोण उपस्थित करने का प्रयत्न किया—'घनानद को यदि हम वैष्णव भावनाओं से प्रभावित हुआ भी पाते हैं किंतु इसमें सन्देह नहीं कि वे मूलतः रहस्योन्मुखी प्रेम-काव्य के कवि हैं और सूफी तथा निर्गुण-प्रेमी कवियों के अन्तर्गत मीरा की भांति आते हैं। मीरा में जिस प्रकार बाह्य रूप से परम वैष्णव सगुण की भावना की दिखलाई देती है किंतु उसका प्रेम रहस्योन्मुखी अनन्त सत्ता–जिसे वह प्रिय गिरधर गोपाल, प्रभु आदि आदि शब्दों से सम्बधित करती है–की विरह वेदना की विकलता की साक्षी है, उसी भांति घनानद चाहे कृष्ण के तथा राधा के सगुण रूप का, उनकी कृपा का, उनकी लीलाओं का सजीव और प्राणों को प्रसन्न कर देने वाला गुण गान करते हैं, परन्तु प्रधानता उनमें उस विरह भावना की मर्मस्पर्शी विकलता की है जो जायसी, इमामशाह, कबीर, मीरा, दादू, नानक, बाबा लालदास, सरमद आदि प्रेममार्गी सन्तों में पाई जाती है। इसलिए घनानद का काव्य रसखान, सूर तुलसी, वैष्णवधारा के कवियों से उतना मेल नहीं खाता जितना प्रेम रहस्योन्मुखी सन्तों की विरह वाणियों से।"

किंतु आगे चलकर श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना घनानद को फिर वैष्णव कवियों के समकक्ष भी देखने लगते हैं। अभी ऊपर रहस्योन्मुख सन्तों की परम्परा में उनका स्थान निर्धारित करने के पश्चात् ही उनकी विचारधारा फिर पलटकर उनकी रचनाओं पर जाती है और वह घनानद का स्थान पूर्व निर्धारित परम्परा में न रखकर वैष्णवों की परम्परा में रख देते हैं—'घनानद ने सम्भवतः निर्गुण प्रेम भावना के कवियों, सन्तों तथा सगुण रूपरस परम्परा के भक्तों के जीवन के तात्विक भेद को अपने लिये स्वयं दोनों प्रकार का जीवन बिताकर समझ-समझ लिया था और इसीलिये आगे चलकर सम्भवतः वे रहस्यवादी प्रेमी-कवियों, सन्तों की भावना से हटकर सगुण रसवादी वैष्णवों की परम्परा में आ जाते हैं।" इस प्रकार श्री बहुगुनाजी इनको कभी रहस्यवादी प्रेममार्गी सन्तों में देखते हैं तो कभी इस आधार पर कि इन्होंने रहस्योन्मुखी

घनानन्द का युग

कलाकार का युग पर तथा युग का कलाकार पर प्रभाव—

किसी कवि के काव्य कला का विवेचन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उस कवि के युग विशेष की सम्पूर्ण परिस्थितियों का सिंहावलोकन किया जाय। क्योंकि कवि अपने युग की मान्यताओं और विश्वासों के ऊपर ही अपनी कला की नींव रखता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रतिभावान कलाकार युग की परिस्थितियों से प्रभावित भी होता है और साथ ही वह कभी २ अपने व्यक्तित्व के द्वारा उस युग विशेष को नवीन मार्ग भी प्रदर्शित करता है और इसी प्रकार एक युग की विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है। हिंदी साहित्य के वीरगाथा में लोक रुचि वीर गीतों की ओर ही थी और उसका कारण उस समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ही थीं। अधिकतर कवि वीर प्रशस्ति लिखकर ही अपने कवि कर्म की सफलता मानते थे। किन्तु धीरे धीरे परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ कवियों की कला में भी परिवर्तन आया और 'वज्जिय घोर निसॉन' लिखने वाले कवियों का स्थान कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि महाकवियों ने ले लिया। वीरता का स्थान भक्ति ने लिया। जहाँ वीरगाथाकाल के कवि केवल राजाओं की तलवार की प्रशंसा में लगे रहते थे वहाँ इन भक्त कवियों ने जनता को एक सम्बल देकर, ज्ञान, प्रेम, लोकमंगल और लोकरंजक गुणों से युक्त ईश्वर के रूप को सन्मुख रखा। जिस समय इन भक्त कवियों का उदय हुआ उस समय भारतीय जनता घोर निराशा के अन्धकार में निमग्न थी। उस समय इन भक्त कवियों की कविता जनसमाज की आत्माभिव्यक्ति के रूप में ही हुई। उसने मुरझाये हृदयों को प्रफुल्लित कर दिया। इस प्रकार युग की परिस्थितियों ने ही इन कवियों को उत्पन्न किया।

किया। मिश्रजी का कथन है—'उन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोमङ्ग के कवि ही मानने का वास्तविक कारण यही है। रीतिबद्ध बिहारी निम्बार्क (राधा-तत्व प्रधान) सम्प्रदाय मे ही दीक्षित थे। अपनी सतसई में राधा से बाधाहरण करने की प्रार्थना करके उन्होने अपना सम्प्रदाय व्यक्त कर दिया है पर वे भक्तो की श्रेणी में नहीं बैठाये गए। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त-कवियो की सी नहीं है। घनआनन्द ने अन्त मे भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी। पर लौकिक प्रेम का सुजान नाम ये न भूल सके।'

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने शुक्लजी के मत को ही व्यापकता प्रदान की है। शुक्लजी ने जो यह कहा था कि घनानंद निम्बार्क मत में दीक्षित थे इसको भो श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी कहा है और अन्त में उनका कथन यही है कि यह फिर भी भक्त कवियों की कोटि में नहीं आ सकते क्योंकि इनकी रचना भक्तो की सी नहीं ।

भक्तकवियों की विशेषता—घन-आनद भक्त कवि थे अथवा रहस्योन्मुख प्रेम कवि थे इस विषय पर विचार करने से पूर्व हमको भक्त कवियों की विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि घनानन्द की कविता मे राधा-कृष्ण की लीलाओ अथवा गुणगानों को अधिक महत्व दिया गया है इसलिये से ही कवि को देखना चाहिये जो कि कृष्ण भक्त कवि मान्य हो। यदि इस ष्टि से हम कृष्ण भक्त कवियो पर दृष्टिपात करते हैं तो उनमे महाकवि सूरदास ऐसे कवि हैं जिन्हें हम भक्त कवि के रूप में मानते हैं। उनके ऊपर वैष्णव धर्म का पूर्ण प्रभाव था। उनकी रचनाओ में वैष्णवधर्म के आचार्य बल्लभ के सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है। सूर ने कृष्ण की लीलाओ को अपने सम्प्रदाय के नियमानुसार ही वर्णित किया है। किन्तु फिर भी कवि और ोरे भक्त मे पर्याप्त अन्तर पडता है। भक्त को केवल उन दार्शनिक सिद्धान्तो ो लेकर चलना पड़ा है जो कि उसके सम्प्रदाय के आचार्यों ने आवश्यक ाये हैं और कवि तो कल्पना के आधार पर ही उन सिद्धातो को अपने काव्य स्थान देता है। इसलिए उनके वास्तविक रूप में अन्तर पड जाता है। यही ा है कि सूर की रचनाओ में बल्लभ के सम्प्रदाय के नियम व सिद्धातों की अवहेलना हो गई है।

और विद्यापति ने भी राधा के रूप को शाक्तों से ही अपनाया था। राधा का रूप हिन्दी साहित्य मे दो प्रकार से आया। निम्बार्क के द्वारा तो उसे धार्मिक रूप दिया गया तथा विद्यापति आदि कवियो ने उसे कविता के क्षेत्र मे लाकर कवियो को एक ऐसी सौदर्य की प्रतिमा दी जिसके रूप के वर्णन को करते २ ‍अभी तक तृप्त नहीं हुए।

घनानन्द में राधा के दोनो रूप हैं। जहाँ पर उन्होने कृष्ण की शक्ति के रूप में लिया है वहाँ राधा साम्प्रदायिक घेरे मे ही हैं किंतु जहाँ उनको केवल श्रृङ्गार भावना को अभिव्यक्त करने का साधन बनाया है वहाँ पर उनका वही रूप है जो शताब्दियो से कवियो के द्वारा जनता की श्रृङ्गार भावना को सन्तुष्ट करने के लिए वर्णित होता आया था। कृष्ण-भक्त कवियो ने उस पर दर्शन का आवरण चढाकर ग्रहण किया। इसलिए सूरदास आदि कवियो मे राधा का स्थान बहुत ही उच्च एव भक्तों की मुक्ति का स्रोत रहा किन्तु आगे चलकर रीतिकाल के कवियो मे केवल श्रृङ्गार की देवी के रूप मे ही राधा को ग्रहण किया गया। इस प्रकार भक्तो को अपनी कृपा से मुग्ध करने वाली शक्ति का रूप एक सामान्य नायिका मे ही देखा जाने लगा। घनानद के काव्य में राधा के दोनो रूप हैं। उनकी लीलाओ को एव उनकी गुण गाथाओं को वैष्णव कवियो के समान भी वर्णित किया है तथा श्रृङ्गारी कवि के रूप मे राधा को एक सामान्य नायिका बना दिया है। नीचे राधा के दोनो रूपो को दिया जाता है।

'भावना प्रकाश' में घनानद ने राधा और कृष्ण के साम्प्रदायिक रूप को दर्शित किया है—

'राधा मोहन जोट अनूप। अमल अनन्द अपूरव रूप।
उनकी लीला अचरज खानि। कौन सके या मरमहि जान॥'

कृष्ण और राधा के प्रेम को भी कवि ने किस उच्चभूमि पर वर्णित किया है—

'प्रेम विवस न गिनत निसि भोर। दोउ दुहुँन के चन्द्र चकोर॥
केलि कला पंडित रस मण्डित। नित नव-नव रुचि-रचे अखडित॥

औरंगजेब कट्टर मुसलमान था। उसका राज्यकाल सं० १७१५ से १७६४ तक रहा। उसने हिन्दुओं को अपना व्यक्तिगत शत्रु समझा और साथ ही इस्लाम धर्म का भी। इसलिये उसने अपने पूर्वज अकबर की नीति को ठुकरा कर हिन्दुओं पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। उनके धार्मिक स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया। जो जनता अकबर की कूटनीति के कारण शान्त होकर दिल्ली के बादशाह को ही अपना बादशाह मानने लगी थी और यह भ्रम जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल तक उस पर छाया रहा था औरंगजेब के अत्याचारों से फुत्कार उठी। किन्तु शासक की कठोरता और शक्ति का मुकाबिला करने के लिये वह काफी समय तक अपनी शक्ति का सचय करने मे लगी रही। अन्त मे वह समय भी आया जब औरंगजेब के विरुद्ध उपद्रव होने लगे। उत्तरी भारत मे अनेको स्थान पर विद्रोह की आग भड़की किन्तु औरंगजेब ने उसे और अधिक कठोरता के साथ दबाने का प्रयत्न किया। इसमे कोई सन्देह नहीं कि औरंगजेब स्वय एक वीर और सशक्त बादशाह था इसलिये उपद्रवो को दबाने मे वह सफलता ही पाता रहा। किंतु फिर भी उसके अत्याचारो के विरोध मे देश मे कहीं न कहीं उपद्रव और विद्रोह अवश्य होते रहे। औरङ्गजेब भी अधिक क्रोध के साथ निरीह जनता को तलवार के घाट उतारता रहा। उसने हिन्दुओ के मन्दिरो को तुड़वाया, मथुरा के प्रसिद्ध मन्दिर के स्थान पर मस्जिद बनवाई, इसके अतिरिक्त और भी ऐसे कार्य किये जिनसे हिन्दुओ मे उसके प्रति भयङ्कर घृणा उत्पन्न हुई।

औरंगजेब के अत्याचारो के विरुद्ध हिन्दुओ में अपने धर्म और स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया। राजपूताने के अनेको राजा जो मुगल सिंहासन के प्रति अपनी भक्ति रखते थे, और उनके पूर्वज अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के काल मे अपनी तलवार लेकर मुगल साम्राज्य की रक्षा मे तत्पर रहते थे औरंजेब के साम्राज्य की जड़ खोदने मे लग गये।

पजाब के सिखो ने एक सगठित सैन्य शक्ति बना कर अत्याचारो के विरोध मे लड़ना प्रारम्भ कर दिया। उनके गुरू तेगबहादुर और गोविंदसिंह आजीवन मुगलो के विरुद्ध लड़ते रहे। सिखो की सघटित शक्ति को देखकर औरंगजेब की असहिष्णुता और भी अधिक बढी। उसने कठोरता के साथ

प्रतिपादित सिद्धांतो को अपनाकर अनेक मौलिक तत्वो का समावेश भी किया। उसी प्रकार घनानंद आंशिक रूप से तो निम्बार्क सम्प्रदाय से प्रभावित रहे। लेकिन उन्होंने अपनी प्रेम साधना मे अन्य मतों और सम्प्रदायो के सिद्धान्तों को भी अपना लिया। जहाँ इन्होंने लीलाओं को प्रमुखता दी है वहाँ वह कृष्ण भक्त कवियों से प्रभावित है। जहाँ प्रेम की पीर का वर्णन है वहाँ उन पर सूफी प्रभाव है। सूर के समान घनानद ने भी कृष्ण को अनेको रूपो में देखा है। वल्लभ ने कृष्ण के बाल रूप को ही अधिक महत्व दिया था लेकिन सूरदास ने अपने कृष्ण को बाल-रूप के अतिरिक्त युवक रूप में भी देखा। घनानद ने राधा को पूर्ण युवती के रूप में चित्रित करके अपनी शृंगार भावना का परिचय दिया है—

सारी सुरङ्ग चहचही निपट पहिरे राधा गोरी।
सॉवरे वरन गोल कपोलनि हिल मिलि खिलै॥
भूलै जोबन उमग रङ्ग बोरी।
नथ के मुकता पानिय भरे भाल पै दिपति लाल बेंदी।
मधुर अधर वीरी खान उघरि करति चितकी चोरी॥
आनन्दघन पिय कौ हिय नीबी कसनि गसनि वस्यौ।
लङ्क लचकि निसक अङ्कभरति दुति औरी॥

घनानद ने कृष्ण के जन्म के विषय में भी लिखा है—
'आजु हमारे काजु है हो जन्यौ जसोमति मोहन स्याम उजियारो ?
वृन्दावन और यमुना का यश भी घनानद ने अनेको पदो में गाया है—

जमुना देखे ही दुख भाजै।
इन्द्रनील मनि इन्दीवर दलहू की उपमा लाजै॥
सब सुख राखि रसामृत-सींवा वृन्दावन में राजै।
आनन्द घन व्रजमोहन पीय के अग संग रग साजै॥

जिस प्रकार सूरदास ने मुरली को भी कृष्ण के साथ२ अधिक महत्व दिया है इसी प्रकार घनानद ने भी मुरली को लेकर अनेक कवितायें लिखीं हैं—

किंतु उस भक्ति को भी केवल इसीलिए अपनाया था जिसमें उनको अपने
य के प्रेम विषयक उद्गारों को व्यक्त करने मे सहायता मिली। उनके
व्य का प्रमुख स्वर प्रेम था, भक्ति नहीं। इसलिये घनानद को एक प्रेम
गायक के रूप में ही मानना अधिक न्याय सगत होगा। जिस सम्प्रदाय मे
नको अपने प्रेमतत्व के प्रदर्शन का अवसर मिला उसी की उन बातों को
स महाकवि ने अपनाया। इसलिये हम यही कह सकते हैं कि घनानद जिस
कार काव्य प्रणाली की एक बॅधी लकीर पर नहीं चले थे उसी प्रकार किसी
एक भक्ति-पद्धति और सम्प्रदाय को भी उन्होंने नहीं अपनाया। यहाँ भी
उनका दृष्टिकोण स्वच्छन्द ही रहा।

पंजाब के सिक्ख और दक्षिण के मराठों ने अपने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। दिल्ली का बादशाह नाम मात्र का बादशाह था जिस साम्राज्य की रक्षा के लिये औरंगजेब जीवन भर लड़ता रहा था वह उसके निर्बल पुत्रों से न सम्भल सका। सरदारों ने अपने २ स्वतन्त्र राज्य बना लिये। पुर्तगाल और हालैण्ड की व्यापारी कम्पनियाँ भी अपने पैर फैलाने लगीं थीं। अंग्रेज और फ्रान्सीसी भी अब व्यापारी से राजा बनने का प्रयत्न करने लगे थे।

मुहम्मदशाह रंगीले के समय में तो विलासिता का दौर इतना बढ़ा कि सम्पूर्ण हरम मदिरा और नृत्य की तरंगों में झूमने लगा। सम्पूर्ण देश में छोटे-छोटे राज्य बन गये और उनमें भी पारस्परिक विद्वेष की भावना अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। ऐसे समय में ईरान के बादशाह नादिरशाह का आक्रमण हुआ। उसने रंगीले बादशाह को बन्दी बना लिया और दिल्ली की निरीह जनता का भयङ्कर रक्तपात हुआ। इस आक्रमण के पश्चात् तो सल्तनत केवल नाम मात्र को रह गई। अवध और बंगाल में सूबेदार ही शासक हो गये। दिल्ली के बादशाह की जो कुछ इज्जत थी उसको अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण ने निःशेष कर दिया।

धार्मिक परिस्थितियाँ—मुगल साम्राज्य के इस उत्तरकाल में हिन्दू और मुसलमान दोनों में धार्मिक कट्टरता के अनुयायी भी थे और ऐसे भी व्यक्ति थे जो धर्म के मामलों में सहिष्णु भी थे। हिंदुओं में ऐसे हिंदू थे जो शास्त्रीय रीतिनीति के पक्के अनुयायी थे। उनके धार्मिकता ग्रन्थों में लिखित नियम, उपनियम के ही अनुसार चलती थी। मुसलमानों में इस प्रकार के अनेक मुल्ला और मौलवी थे जो कुरान की आयतों को ही जीवन पर लागू करने के पक्षपाती थे। उनमें भी बाह्याचार और ढोंग की प्रधानता थी किन्तु इस्लाम धर्म शासक वर्ग का धर्म होने के कारण कुछ निरंकुशता और घृणा का प्रचार भी अवश्य करता रहा। मुल्ला और मौलवियों ने हिन्दू धर्म के विरोध में बोलना अपना धर्म समझ रखा था। इस कारण हिन्दुओं को धार्मिक बातों में निडरता नहीं थी। उनके धार्मिक त्यौहारों की स्वतन्त्रता अकबर से शाहजहाँ तक

उचता है। जो प्रेमी प्रेम के निर्वाह को जीवन के अन्त तक करते हैं वही प्रेमियो मे आदर्श हैं। और उसी की ससार मे सराहना होती है—

भाति अनेक प्रीति जग माहीं। सबही सरस कोऊ घट नाहीं।
जाको मन विरझौ है जामें। सुखी होत सोई लखि तामे॥
ताते सुनि यारी दिल दायक। कीजे प्रीति निवहिवे लायक।
प्रीति करै पुनि और निवाहै। सो आशिक सब जगत सराहै॥

ठाकुर कवि ने भी प्रेम के निस्वार्थ और निष्काम रूप को ही आदर्श प्रेम की सज्ञा दी। प्रेम की अनन्यता एव एकनिष्ठता इनकी कविता का भी विशेष गुण था—

एक ही सो चित चाहिये ओर लो,
बीच दगा कौ परै नहिं डॉको।
मानिक सो मन बेंचिके मोहन,
फेरि कहा परखाइबो ताको॥
ठाकुर काम न या सबको,
अब लाखन मे परवान है जाको।
प्रीति करै में लगै है कहा,
करिके इन ओर निवाहिबो बॉकौ॥

इस प्रकार प्रेम के इन तीनो उन्मुक्त गायको के हृदय में प्रेम के ऊपर बलिदान हो जाने का साहस है। किसी को अपना बना लेना अथवा किसी का हो जाना यह इन स्वच्छन्द प्रेमियो की विशेपता है।

इन सपूर्ण कवियो ने जीवन में प्रेम किया था और उस प्रेम की असफलता के कारण ही इनके हृदय का तार-तार झकृत था। इनकी हृतन्त्री से जो स्वर निकले उनमें वेदना का इतना मार्मिक और हृदयस्पर्शी स्वर है जो बरबस ही हृदय मे एक कसक उत्पन्न कर देता है। रीतिबद्ध कवियो के प्रेम के विषय मे हम अनेक स्थानो पर कह चुके हैं कि उसमें वासना का प्राधान्य था। वे कवि नायक, नायिका के अनेकों कार्य-व्यापारो को ही वर्णित करते रहे। सभोग और सुरति के वर्णनों में उन कवियो को अत्यन्त आनन्द

आगे चलकर समाज की गतिविधि ने [illegible] भी अपनी विलास-
भावना के [illegible] दिया। तीर्थ स्थानों को [illegible] विलासिता और
[illegible] का प्रसार [illegible] कि मन्दिरों में देवदासी के
रूप में अनेकों स्त्रियों को स्थान मिलने लगा। इस प्रकार धर्म एक आडम्बर मात्र
था जिसकी आड़ में ऐसा भी कार्य किया जा सकता था। मन्दिरों में नृत्य
और संगीत की व्यवस्था पर भी [illegible] को धार्मिक मान्यता प्राप्त होने लगा इसलिये
नृत्य और संगीत को भी भक्ति के अन्तर्गत ही स्थान दिया गया। भक्ति की
इस श्रृङ्गार परकता के कारण समाज का नैतिक पतन तो हुआ ही किन्तु साथ
ही यह भी हुआ कि विलासी से विलासी पुरुष भी अपने को सरलता पूर्वक
भक्त की कोटि में समझने लगा। इस प्रकार भक्ति जिसको अत्यन्त ही कठिन
समझा जाता था एक साधारण बात होगई। किन्तु वैष्णव धर्म ने जाति-
भेद के बन्धनों और छूआछूत के विचारों को जटिल रूप ही दिया। इसलिये
निम्नवर्ग के अछूत और अन्य जाति के लोगों के लिए वैष्णव धर्म की
किसी भी शाखा ने स्थान नहीं दिया। उनके प्रति घृणा की भावना ही
विद्यमान थी। यही कारण था कि निम्न जातियों के लोग नानक, दादू आदि
पन्थों की शरण लेते थे अथवा अन्य देवी, देवताओं, पीर, पैगम्बर और
ओलिया आदि को ही अपनी भक्ति भावना का केन्द्र बनाकर पूज्य मान लेते
थे। निम्न जाति के लोगों में ही अनेकों अन्ध विश्वास घर किये हुए थे।
जनता में अनेकों मेले आदि प्रचलित थे।

हिन्दुओं के समान ही मुसलमानों में भी वाह्याचार और ढोंग घर किये
हुये थे। बहुत से पीरों को मान्यता दे दी गई थी। साधारण कोटि के मुसल-
मान अधिक अशिक्षित होने के कारण फकीरों और पीरों की कब्रों पर चद्दर
चढाने और दीपक जलाने को ही मजहब की मान्यता देने लगे थे।

इस प्रकार यदि १७ वीं और १८ वीं शताब्दी की धार्मिकता को देखा
जाय तो वह एक खोखलापन लिये हुए थी। जिन उद्देश्यों को लेकर वैष्णव
आचार्यों ने भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया था और सूरदास अथवा नंद-
दास आदि अष्टछाप के भक्तों ने जिसे जनता के लिये सुलभ कर दिया था,
जिस भक्ति में आत्मा की विभोरता और हृदय की तन्मयता थी, कृष्ण के लोक

को पकड़ते थे और दूसरे वे जिनको भक्ति [illegible] भावना ही प्यारी थी लेकिन [illegible] भावना का था जो भक्ति की आड़ में अपनी कुत्सित विचारधारा की तृप्ति करते थे।

सामाजिक अवस्था—घनानन्द के युग की सामाजिक अवस्था भी राजनि और राजनीतिक अवस्थाओं से भिन्न नहीं हो सकती थी। राजनीतिक अवस्था का चित्रण करते समय यहां पर समाज के निर्धन होने की चर्चा हो चुकी और यह भी कह चुके हैं कि समाज में केवल दो वर्ग थे-शासक और शासित विलासिता और शौकीनी भी उस समय अपनी चरमसीमा पर थी। साधारण लोग तो बेचारे रोटियों के लिये तड़पते थे और बादशाह एवं उनके चाटुका इत्र मे और गुलाबजल मे स्नान करते थे। उनके महलों को देखकर ऐसा प्रती होता था कि मानो इन्द्र की अलकापुरी के महल ही पृथ्वी पर उपस्थित क दिये गये हो। गर्मी के दिनो मे राजाओ के तहखानो मे सदा का अनुभव हो लगता था। जरी और सोने-चाँदी और जवाहिरात के कपड़ो का पहिनक जिस समय मुगल बादशाह और उसके दरबारी लोग दरबार मे उपस्थित हो थे तो दर्शको की आँख चकाचौध होजाती थी। सहस्रो सुन्दरियो के कंठ से अन्तःपुर मे संगीत की गूँज प्रवाहित होती रहती थी। मदिरा के दौर सम्पूर्ण राज महल विभोर होते रहते थे। इन विलासी राजाओ और जागीर दारो की दुश्चरित्रता के कारण समाज मे आतंक छाया रहता था। हिंदुओ लड़कियो के विवाह पालने मे ही होने लगे थे क्योंकि उनको शासक वर्ग क कामान्धता का भय था। परदे की प्रथा अत्यन्त कठोर रूप मे थी। उस सम के पतनोन्मुख समाज की अवस्था का चित्रण डा० ईश्वरीप्रसाद ने इस प्रका किया है "मुगल पदाधिकारी तथा उच्च वर्गीय सामन्त आचरण भ्रष्ट हो र थे। मदिरा पीने के कारण उनका नैतिक पतन हो गया था। उनकी सन्ता निकम्मी और अकर्मण्य थी। उनका समय नर्तकों, हिजड़ो, मसखरो आदि के साथ मनोविनोद करने मे व्यतीत होता था। शूरवीरो की कमी थी। मुगल सेनापति एवं सैनिक विलास प्रिय हो गये थे। बिना मुहूर्त देखे वे कोई भी काम नहीं करते थे। ज्योतिषियो की पूछ समाज मे बहुत थी। समाज मे और भी अनेक प्रकार के दोष आ गये थे। नैतिक पतन के कारण राजकर्मचारी घूस

हिन्दी काव्य का रीति के बन्धनों में आ, राजाओं और नवाबों
दरबारों में ही सीमित रह गई। जनता से उसका सम्पर्क नाम मात्र का भी
नहीं रहा। कामुकता और विलासिता का साम्राज्य छा गया था इसलि
कवियों ने अपने स्वाभिमान को खोकर अपने आपको इन राजाओं और सामन्
की कुरुचि का शिकार बनाया। इस प्रकार रीति कविता की सरसता सा
सामन्त और नवाब लोग ही थे। दिल्ली के शासक अपनी विलासिता
मदमत्त थे और उन्हीं के अनुकरण पर राजा और सामन्त भी अपनी वासनाओं
के गुलाम होकर नैतिकस्तर से गिर चुके थे। कुछ राजनीतिक वातावरण भ
ऐसा था कि अब युद्ध की ओर किसी की उतनी रुचि नहीं थी और न अ
भगवान की उपासना में ही किसी का ध्यान लगता था। अब तो सुराह
प्याला और सुन्दरी की ही चर्चा चारों ओर हो रही थी। रूप सौंदर्य ह
कवियों का विषय रह गया था। शृङ्गार रस की सरिता में काव्य निमज्जित औ
निमग्न हो रहा था। कवियों का और सौंदर्य का सम्बन्ध आदि काल से
वरन् कहना चाहिये कि सौंदर्य के व्यापक रूप को लेकर ही कवि और कला
कार अपने को सफल बना सकते हैं। रीतिकालीन कवि भी सौंदर्य के ह
पुजारी थे। लेकिन सौंदर्य भी स्त्री के अङ्गों में ही सकुचित रह गया। कालि
दास और भवभूति के समान रीतिकालीन कवियों की दृष्टि व्यापक सौंदर्य क
ओर नहीं गई। यदि कहीं उनको सौंदर्य दिखलाई देता था तो वह नायिका वे
अङ्ग प्रत्यंगों में ही। प्राकृतिक सौंदर्य भी अब नायिकाओं के अङ्गों की समा
नता में हेय समझा जाने लगा था। प्रत्येक कवि अङ्गों का नख से शिख तक
वर्णन करना आवश्यक कार्य समझता था। अनेक प्रकार की नायिकाओं को
लक्षणों में महत्व दिया गया। परिणाम यह हुआ कि बाह्य सौंदर्य की ओर
ही कवियों का ध्यान अधिक रहा। आन्तरिक सौंदर्य की पिपासा, जो कि कवि
को उत्कर्ष और विकास की सीढ़ियों पर चढ़ाती है, देखने को नहीं मिलती।
कविता को पिंगल के लक्षणों में बाँध दिया गया। छन्द और मात्राओं की
ओर कवियों का ध्यान अधिक रहा, भावों की ओर से वे उदासीन हो
गये। मुख्य छन्द सवैया, कवित्त दोहा थे।

आध्यात्मिक प्रेम अथवा अलौकिक प्रेम का स्थान वासनाजन्य प्रेम ले

उसको भी निखारा है। कालिदास के मेघदूत में भी कवि ने यक्षिणी के रूप सौंदर्य के साथ उसके हृदय गत सौन्दर्य को भी देखा है। एक नहीं, संस्कृत के अनेक कवियों ने अपनी श्रृंगार भावना को परिपुष्ट करने के लिए नारी का ही अपने काव्य ग्रंथों में रखा। किन्तु सबसे बड़ी बात उन कवियों के ग्रंथों में यही थी कि उन्होंने नायिका के बाह्य सौन्दर्य के साथ उस आन्तरिक सौन्दर्य को भी देखा जो उसके हृदय में संचित रहता है। किस प्रकार वह अपने पति पुत्र तथा अन्य लोगों के दुख सुख में सहायक होती है। किस प्रकार अपने त्याग और कर्तव्य के द्वारा अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान कर देती है। उन्हीं के मूल कारणों से स्त्री पुरुष के हृदय में स्थान पाती रही। किन्तु संस्कृत साहित्य के उत्तर काल में आकर नारी के बाह्य सौन्दर्य की ओर ही कवियों का आकर्षण अधिक रह गया। इसका मूल कारण उस समय के समाज का रुचि परिवर्तन ही कहा जा सकता है। सामंतीय व्यवस्था में स्त्री केवल मनुष्य के विलास का कारण रह गई। उसके अङ्गों के सौंदर्य को ही कवियों ने अधिक देखा। उसके हाव-भाव और मुद्राओं की ओर ही कवियों ने अधिक ध्यान दिया।

संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य का प्रभाव—हिन्दी काव्य की श्रृङ्गार भावना का मूल स्रोत संस्कृत और प्राकृत के काव्यों में ही मिलता है। प्रथम शताब्दी की रचना गाथा सप्तशती है। उसमें राधा को कृष्ण के द्वारा चुम्बित करने की चर्चा इस प्रकार है—

> मुहमारूपणंत कह गोरअ्र राहिआये अवणेत्तो।
> एताण बलवीण अगणाणँ वि गोरअ्र हरिस॥

इसके अतिरिक्त बाणकी कादंबरी, श्रृङ्गार शतक, आर्या-सप्तशती, अमरुक शतक, जयदेव का गीत गोविंद आदि में श्रृङ्गार भावना के ही दर्शन होते हैं। विद्यापति के काव्य में संस्कृत की श्रृङ्गार पूर्ण भावराशि का ही संचय है।

संस्कृत से हिंदी में आकर श्रृङ्गार की भावना दो पहलू लेकर चल पडी। एक आध्यात्मिक थी और द्वितीय लौकिक। भक्ति काल के कवियों ने श्रृङ्गार को राधा और कृष्ण के चारों ओर इस प्रकार से सजोया कि लौकिक होते हुए

अपना लिया गया। रीतिकालीन कवियों के अनेक भाव सस्कृत काव्य से अपहृत किये गए हैं।

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी रचना के कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार इनके दोहों पर सस्कृत की शृगार परक रचनाओं का प्रभाव था। इसी प्रकार अन्य रीतिकालीन कवियों की रचनाओं पर भी सस्कृत काव्य का ही पूर्ण प्रभाव था। बिहारी के प्रसिद्ध दोहे को ही लीजिए जिसके विषय म कहा जाता है कि यह इन्होंने राजा जयसिंह की विलासिता के ऊपर अन्योक्ति के रूप म प्रस्तुत किया था—

नहि पराग, नहि मधुर मधु, नहि विकास यहि काल।
अली कली ही सो बिन्ध्या, आगे कवन हवाल॥

किन्तु बिहारीलाल का यह प्रसिद्ध दोहा भी उनका अपना मौलिक नहीं। यह भी गाथा सप्तशती के एक श्लोक का ही छाया अनुवाद है—

जावरण कोस विकास पावइ ईसीस मालई कलिया,
मअरन्द पाण लोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि।

उपर्युक्त गाथा सप्तशती के इस उद्धरण का भाव है कि अभी मालती पूर्ण रूप से विकसित भी नही हुई है किन्तु रस के लालची भ्रमर तू उसका मर्दन भी करने लगा।

बिहारीलाल के दोहे के भाव मे और इसमे तनिक भी अन्तर नहीं। वही शब्द, वही भाव और वही आशय है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है जिनसे यह सिद्ध होता है कि रीतिकालीन कवियों की काव्य धारा अधिकतर सस्कृत कवियो की भाव धारा से ही निस्सरित हुई थी। देव, मतिराम, पद्माकर तथा अन्य कवियो की रचनाएँ इस बात का प्रमाण है।

रीतिकाल का सम्पूर्ण नायिका भेद भी सस्कृत साहित्य की बिरासत है। किन्तु अन्तर इतना ही है कि सस्कृत मे नायिका भेद को उतना व्यापक रूप नही दिया गया जितना कि हिन्दी के रीतिकाल मे दिया गया। हिन्दी का नायिका भेद सस्कृत के विश्वनाथ एव भानुदत्त के अनुकरण पर ही है। विश्वनाथ ने मुग्धा के तीन भेद किए थे—प्रथमावतीर्ण यौनना, प्रथमावतीर्ण मदन

अलकारो के भेदो मे इन्होने अपनी मौलिकता भी दिखाई । सामान्य अल-कारो को केशव ने 'काव्य कल्पलता वृत्ति' और केशव मिश्र द्वारा रचित 'अलकार शेखर' के आधार पर ही रखा ।

महाकवि देव ने भी केशव के आधार पर ही अलकार निरूपण किया । दास ने इस विषय पर कुछ मौलिक दृष्टिकोण से भी काम लिया लेकिन उन का आधार भी मूलत संस्कृत ग्रन्थो के ऊपर ही था ।

लक्षण ग्रन्थों का प्रभाव—

रीतिकाल मे शृ गार की जो अजस्रधारा बही उस पर सस्कृत के लक्षण ग्रन्थो की शृङ्गारिक भावना का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित है । नायिका-भेद, नखशिख वर्णन, अलकार निरूपण आदि सभी मे यह शृङ्गारिक भावना ओतप्रोत है । कुछ उदाहरणो से स्पष्ट हो जायेगा कि संस्कृत म शृ गार भावना किस कोटि की थी । खण्डिता नायिका का एक उदाहरण देखिये—

तदाामम गण्डस्थल निमग्ना दृष्टि नानेषीरयन्न ।
इदानी सैवाह तौच कपोलौ न सा दृष्टि' ॥

नायक नायिका के समीप स्थित है । वही पर उसकी प्रिय स्त्री भी खड़ी है । किन्तु नायक अपनी स्त्री के भय से उसको नही देख सकता । इसलिये वह अपनी स्त्री के कपोलो पर उस नायिका के प्रतिबिम्ब को इस प्रकार देखता है जिससे वह स्त्री यह समझे कि वह उसके कपोलो की कान्ति पर इतना अधिक अनुरक्त है कि एकटक दृष्टि से देख रहा है । किन्तु जब वह नायिका वहॉ से चली जाती है तो वह नायक उसके कपोलो पर उस विभोरता से देखना बन्द कर देता है । किन्तु नायिका उसको ताड़ जाती है और उस नायक से कहती है—'तब तो (जब तुम्हारी प्रियतमा यहॉ खड़ी थी) मेरे कपोलो से अपनी दृष्टि को हटाते भी नही थे परन्तु अब (जब वह चली गई) मै यही हूँ और मेरे कपोल भी वे ही हें तथापि आपकी दृष्टि और की और हो गई है ।

इसी प्रकार एक व्यभिचारिणी नायिका का उदाहरण दिया गया है—

श्वश्रूरभ निमज्जति अभाह दिवसके प्रलोकयः
मा पथिक राम्यन्धक शम्यायामावयर्निमडच्चाथि ॥

किसी पथिक से जिसे रात्रि में वहाँ रहना है स्वय दूतिका नायिका की उक्ति है। हे रतौंधी रोग से पीडित पथिक ! तुम दिन मे ही भली भाँति देख कर यह समझलो कि इस स्थान पर मेरी सास लेटती है और यहा पर मै सोती हूँ। कहीं रात को ऐसा न हो जाय कि तुम धोखे से हम लोगो की शय्या पर न गिर पड़ो।

इसी प्रकार रीतिकाल के एक कवि भी अपनी स्वय दूतिका नायिका से इसी प्रकार की उक्ति कहलवाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि जहा सस्कृत में केवल सास के सोने की चर्चा है वहाँ रीतिकालीन यह नायिका अपने प्रियतम के प्रवास तक की चर्चा कर देती हैं—

ननद निनारी मायके सिधारी,
अहो रैन अँधियारी भरु सूझत नकरु है।

\+ + +
\+ × +

सावन की रात थोरी थोरी सियरात,
जागु-जागु रे बटोही यहाँ चोरनु को डरु है।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनमें रीतिकालीन कवियो ने उन उदाहरणो को भी अपना लिया है जो काव्य-प्रकाश और काव्य दर्पण में उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किये गए थे। सस्कृत के इन ग्रन्थो में शृँगार की धारा इस अबाधगति से चली कि रीतिकाल की परिस्थितियों में आकर वह अत्यन्त अनुकूल हो गई।

रीतिकाल के कवियो को यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उनमें तीन वर्ग स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं—

—लक्षण ग्रन्थकार और रीति निरूपक आचार्य,

—वह कवि जिन्होने रीति ग्रन्थो को आधार मानकर अपने काव्य का सृजन किया।

—वह कवि जिन्होंने श्रृंगार के उदात्त रूप को अपनाकर रीतिकाल परंपरा से अपने को मुक्त रखा।

लक्षण ग्रन्थकार—रीतिकाल के कवियों में एक वर्ग इस प्रकार के कवियों का था जो काव्य के लक्षणों का निरूपण करना ही अपनी प्रतिभा का परम लक्ष्य समझते थे। काव्य के लक्षणों की व्याख्या को कविता में बद्ध करके अपने आश्रयदाताओं के सम्मुख रखना ही इनका कर्त्तव्य था। कृपाराम, केशवदास, चिंतामणि आदि इसी प्रकार के कवि और आचार्य थे। इन्होंने हिंदी काव्यशास्त्र की रचना करके हिन्दी काव्य की स्वच्छन्द धारा को एक सीमा में बद्ध कर दिया। रीति परम्परा के प्रचारक यह कवि ही कहलाये।

रीतिशास्त्र से प्रभावित—कवियों का दूसरा वर्ग उनका था जो रीति की परम्परा को मान कर ही कविता करते थे। इन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखे किन्तु इनकी कविता काव्य शास्त्र के नियम और उपनियमों की मान्यता को स्वीकार करके ही चली हैं। रीतिकालीन कवियों में बिहारी, देव, सेनापति, मतिराम और पद्माकर इसी प्रकार के कवि थे।

स्वतंत्र कवि—तीसरा वर्ग उन कवियों का था जिन्होंने रीतिकालीन प्रभाव से अपने काव्य को प्रभावित होने से बचाया। उन्होंने श्रृंगार को ही अपने काव्य में स्थान दिया किंतु उसको भक्त कवियों की सी उदात्त भावना और प्रेम के विशुद्ध रूप से उन्होंने गिरने नहीं दिया। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि इसी प्रकार के कवि थे। उनका काव्य उनके हृदय की स्वाभाविक और सच्ची अनुभूति है। उनके ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।

रीतिकाल के मुख्य विषय :—

नायिका भेद—रीतिकाल का मुख्य विषय नायिका भेद है जो अत्यन्त ही व्यापक और विस्तृत है। सम्पूर्ण रीतिकालीन कवियों को दो शताब्दी तक नायिकाओं के भेद प्रभेदों को वर्णित करने में ही सफलता का मार्ग दिखलाई देता था, और यदि इसे पूर्ण सत्य भी मानें तो अत्युक्ति भी नहीं होगी। क्योंकि उस समय के राजाओं की अभिरुचि ही नायिका भेद को सुनने वाली थी और उन्हीं को प्रसन्न करके ही यह कवि लोग अपना जीवनयापन कर

मतिराम कहै नतराई गयो
सु रहो दिन चार न गौनन के।
अब जाइ पिया सग केलि करो
सु गये दिन खेल खिलौन के॥

यही शृङ्गार उन विलासी राजाओं को चाहिये था और कवियों ने उस प्रकार के शृङ्गार को ही प्रस्तुत किया। पद्माकर भी मुग्धा के लक्षणों को इस प्रकार प्रकट करते हैं—

ऐ अलि या वलि के अधरान पे
आनि चढी कछु माधुरई सी।
त्यो पद्माकर माधुरी त्या
कुच दोउन की चढती उनई सी।
ज्यो कुच त्योही नितब बढे
कछु ज्यो ही नितम्ब त्यो आतुरई सी।
जानी न ऐसी चढाचढी मे
किहिधो कटि बीच ही लूटि लई सी॥

रीतिकालीन कवियो मे इस प्रकार के लक्षणो का प्रस्तुत करके नायिका के भेदो को वर्णन करने की प्रकृति सामान्य थी।

अज्ञात यौवना नायिका और ज्ञात योवना नायिका के बीच सभाषण करके पद्माकर ने जिस भावना को प्रस्तुत किया है वह रीतिकालीन शृङ्गारिक प्रवृत्ति की परिचायक है—

ऐ अलि हमे तो बात की न सूझि परै
बूझति न यामे ऐसी कौन कठिनाई है।
कहैं पद्माकर क्यो अङ्ग न समात आगी
लागी कहा तोहि जागी उर मे ऊँचाई है।
तौव तजि पायन चली है चञ्चलाई कत

वेणी, केश, मुख, नासिका, कपोल, ओष्ठ, भृकुटी, नेत्र, दांत, कुच, पट, जघाय, नाभी, त्रिवली आदि सभी शरीरांगों को रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया। कोई भी कवि नखशिख वर्णन किये बिना अपने काव्य को पूर्ण नहीं समझता था। देव, बिहारी, मतिराम, सेनापति, पद्माकर आदि सभी कवियों के काव्य मे नखशिख वर्णन को एक व्यापक स्थान मिला। नीचे के उदाहरणो से स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार उस काल के कवि लोग इस प्रकार अपने समय का दुरुपयोग इस ऐन्द्रिकता के प्रसार मे कर रहे थे—

जघा —

दोहा—जघ जुगल लोइन निरे करे मनो विधि मैन।
केलि तरुन दुख देन ए केलि तरुन सुख देन॥
(बिहारी)

कटि— हारी हार धार उर भार औ उरोज भार
यौवन मरोर जोर दावे दलयतु है।
परग परग पर यहै जिय होत सेय
टूटि न परत कौन पुण्य भलियतु है।
कोऊ कहै खरी खीन कोऊ कहै कटि हीन
मदन गोपाल ऐसे चित्त धरियतु है
काहू की न मनै सोंक कहत ही आई नाक
ऐसे खीने लोंक पै उलोंक चलियतु है।

इसी प्रकार के अनेको विवरण उस काल के कवियो के मिलते हैं। उन्होने भाव की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया उनको तो वस्तु का वर्णन मात्र करना था।

इस प्रकार के वर्णनो के द्वारा उस समय के विलासी राजाओ और सामतों की काम-पिपासा उद्दीप्त होती थी और वह लोग इन कविराजो को धन देकर इसी प्रकार की कविता लिखने को प्रोत्साहित करते थे। नखशिख वर्णन मे कवियो ने नायिकाओ के उन अङ्गो पर अपना ध्यान अधिक आकर्षित किया जो काम को उत्तेजित करने वाले थे।

मे भी भावपूर्णस्थल थे किन्तु अन्तर इतना था कि जहाँ भक्तिकाल के कवियों की मूल प्रवृत्ति भावों को प्रधानता देने की ओर थी वहाँ इन रीतिकालीन कवियों की प्रवृत्ति कला के बाह्य उपकरणों को सजाने की ओर अधिक रही बिहारी जैसे कलाशास्त्री ने तो बाह्य-सौन्दर्य के साथ साथ अन्त वृत्तियों को भी अत्यन्त सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया है । किन्तु उनके काव्य की मूल प्रवृत्ति अलङ्कार और अन्य भाषा विषयक बाह्य उपकरणों की ओर ही अधिक रही । पद्माकर भाषा के सजाने मे रीतिकालीन कवियों में सबसे अग्रणी रहे कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार भक्तिकाल मे काव्य की मूल प्रवृत्ति आन्तरिक भावों के प्रदर्शन की ओर अधिक थी उसी प्रकार रीतिकालीन काव्य की मूल प्रवृत्ति बाह्य सौन्दर्य के उत्कर्ष की ओर ही अधिक रही ।

भेद, नखशिख वर्णन, ऋतु वर्णन तथा छन्दो मे कवित्त, सवैये, दोहा आदि को प्रधानता दी गई। शृ गार रस को रसराजत्व दिया गया। भक्ति और उपासना को अधिक महत्व नहीं दिया। यदि उस काल मे भक्ति का रूप कुछ मिलता भी है तो वह भी शृ गार की भावना से ओतप्रोत और निम्न स्तर का ही है। भक्ति की उस विभोरता और रसमग्नता का चित्र केवल कुछ कवियों मे ही मिलता है। घनानन्द आदि कवियो ने कृष्ण और राधा विषयक कुछ कवितायें लिखीं लेकिन उनमे भी उनकी मनोवृत्ति शृ गार के रूप को दिखाने की ओर ही अधिक रही है। लौकिक प्रेम का स्पष्टीकरण इन कवियो के द्वारा भी अधिक किया गया।

भक्तिकाल के कवियो ने काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य को देखने का ही प्रयत्न किया था। उनके काव्य मे उनकी आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति थी। किन्तु इस काल के कवियो ने अपनी कविता राज्याश्रय मे ही लिखी इसलिए उन्होंने अपने स्वामियो की प्रसन्नता के लिये चमत्कार की ओर ही अपना ध्यान अधिक रखा। इसमे कोई सन्देह नहो कि इनकी कविताओ मे कहीं-कहीं भाव भी उच्च कोटि के हैं किन्तु उनकी ओर ध्यान अधिक नही। देव अवश्य एक ऐसे कवि थे जिनमे हम रीतिकालीन नियमो की मान्यता के होते हुए भी भाव पक्ष भी गौण नही पाते। कही-कहीं तो उनके काव्य मे भक्त कवियो की सी ही तन्मयता प्रतीत होती है।

सतसई लिखने की एक परम्परा सी चल पड़ी थी। बिहारी, मतिराम आदि अनेक कवियो ने सतसइयो की रचना की जिनमे शृ गार रस को ही प्रमुखता दी गई।

इस काल मे लक्षण ग्रन्थो की परिपाटी चल पड़ी। कवि लोग कविता को केवल नायिकाओ के लक्षणो और भेदो के ही लिये लिखते थे। इस काल की विशेषताओ के विषय मे आचार्य शुक्ल ने इस प्रकार अपना मत दिया है–'रीति ग्रन्थो की इस परम्परा के द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास मे कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न भिन्न चित्य बातो तथा जगत के नाना रहस्यो की ओर कवियो की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और सीमित सी हो गई। उसका क्षेत्र सकुन्चित हो गया।

की मुख्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ थीं—(१) काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण और उनका उदाहरण सहित विवेचन होता था। नायिकाओं के भेद और प्रभेदों का भी काव्य में प्रमुख स्थान था। नखशिख वर्णन का प्राधान्य था। (२) मुख्य रस शृंगार था। शृंगार के संयोग और वियोग-पक्ष को कवियों ने अनेक प्रकार से वर्णित किया है। (३) अलंकारों के द्वारा अर्थ में चमत्कार विधान करने का प्रयत्न रहा। (४) नारी के प्रति सामन्तवादी दृष्टिकोण था वह पुरुष के भोग की ही वस्तु थी। उसके सामाजिक अधिकारों का पक्ष गौण था। (५) राधा और कृष्ण की प्रेमाभक्ति के स्थान पर नायक और नायिकाओं की विलास प्रियता ही प्रधान थी।

स्वच्छन्द कवि घनानन्द—ऐसी परिस्थितियों में महाकवि घनानन्द उत्पन्न हुये। किन्तु उन्होंने शृंगार के उदात्त रूप को ही लिया और प्रेम की ऐसी तान छेड़ी जिसने सम्पूर्ण रीतिकालीन वातावरण की नीरसता को दूर कर दिया जो एक बँधी हुई परिपाटी के कारण उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने अपने भग्न हृदय की ऐसी सच्ची और सरल अभिव्यक्ति की कि उस समय के कलापारखियों ने उनके काव्य को रीतिकालीन काव्य से अधिक महत्व दिया। घनानन्द का काव्य किसी प्रकार की सकुचित सीमाओं के बन्धनों में नहीं था। इसको किसी सँकरी और गन्दी गली में नहीं चलना था वरन् एक प्रशस्त राज मार्ग का अवलम्बन करता था। घनानन्द को किसी राजा और सामन्तों की प्रशंसा या प्रसन्नता के लिये अपने काव्य का सृजन नहीं करना था वरन् अपने हृदय की कोमल और उदात्त भावनाओं को जनता के समीप पहुँचाना था। यही कारण है कि उनकी कविता में भावोद्रेक को ही प्रधान रूप मिला।

घनानन्द की विशेषता—रीतिकालीन कवियों और उनके काव्य से यदि घनानन्द और उनके काव्य की तुलना की जाय तो घनानन्द में और उन रीतिकालीन कवियों के काव्य में जमीन आसमान का अन्तर है। रीतिकालीन कवियों की मुख्य प्रवृत्ति थी कि उनमें भक्ति की विभोरता और तन्मयता का कहीं नाम नहीं था। केवल नायिकाओं के भोग-विलास, अभिसार और अन्य चेष्टाओं का वर्णन ही उनका मुख्य कविकर्म था किन्तु घनानन्द में ऐसी कोई भी बँधी परिपाटी नहीं थी। उनका काव्य उनके हृदय की मुक्तावस्था में ही

अभिव्यजित किया गया था इस कारण उसमें अन्तःवृत्तियो का आलोडन-विलोडन ही अधिक था। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओ को प्रत्यक्ष रूप देने में धनानन्द को जो सफलता मिली उसके विषय मे रीतिकाल के कवियो का कोई ध्यान भी नहीं था। उनका काव्य तो उनके चमत्कारिक प्रयोगों का अखाडा मात्र था। ठाकुर कवि ने इन रीतिकालीन कवियो के विषय में उचित ही कहा था—

सीखिलीनो मीन मृग खजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप की कहानी है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चितामनि,
सीखि लीनो मेरु और कुबेर गिरि आनी है॥
ठाकुर कहत याकी बडी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहू बॉधियत बानी है।
ढेल लौं बनाय, आप मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानी है॥

अलङ्कारो की पिटी-पिटाई लीक पर ही कवि लोग अपना ध्यान केन्द्रित किये हुये थे। स्त्रियो के अगो को कवियों ने अनेक रूपो से चित्रित करके काव्य का उद्देश्य ही सम्भवतः नखशिख को ही बना लिया था। भाषा की सजीवता, शब्दों का सुन्दर चयन सभी कुछ इन रीतिकालीन कवियो में अपने चरमोत्कर्ष पर था किन्तु भाव-प्रवणता और भाव-गाम्भीर्य का जहॉ तक प्रश्न था वह इन कवियों में न्यून मात्रा में ही था। काव्य के वाह्य आवरण को सजाने मे ही इन कवियों की प्रतिभा समाप्त होजाती थी। शृगार की उथली नालियों में ही यह कवि लोग अपनी प्रतिभा को नष्ट कर देते थे। यदि उस काल में स्वतन्त्र शृगार रस के गभीर सागर मे किसी ने डुबकी लगाई तो वह केवल कतिपय कवि थे। उनमें बोधा, ठाकुर और घनानन्द का नाम प्रमुख है। यह सम्पूर्ण कवि अपनी सच्ची अनुभूति को अभिव्यक्त करने के कारण उस काल में भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में समर्थ हुये। प्रेम की गम्भीर और स्वाभाविक पीर का जितना सुन्दर समन्वय इन कवियो के काव्य में मिलता है

ब्रज बाला मुरली के नाद के वशीभूत होकर अपने पतियों को छोड़कर अनेक अभिलाषाओं से युक्त होकर कृष्ण के दर्शनों को निकल पड़ी हैं—

बंशी बजे ब्रज मोहन की बन गलियाँ।
स्याम सुन्दर जमुना तट विहरत गगन मगन की छहियाँ।
मादक नाद सवाद छके भ्रमत नाग मृग नग जहँ तहियाँ।
आनद मनहि निरखि सुरबनिता अभिलाषिन भीजी
भूलि पतिन गरबहियाँ॥

यमुना भी शृङ्गार रस को उद्दीप्त करती है। उसका सौभाग्य है कि वह कृष्ण को अपने आलिगन पाश मे बद्ध करती है—

'यमुना सरस सिगार हिये मे जागत तेरो रूप निहार,
तरल तरगिन अतिरति रगनि भेटत स्यामहि सहस भुजानि पसार।'

कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुनकर समस्त ब्रज मे आनद ही आनद है। ऊपर से बसन्त का भी आगमन हो गया है इस कारण कु जो मे भ्रमरो के झुड के झुड अपनी मधुर गु जार ध्वनित कर रहे हं। कभी कोकिल के मधुर स्वर की गू ज वनस्थली को मधुरिमा से प्लावित कर देती है। दम्पति अपने विहार मे पूर्ण रूप से लीन हैं—

'वृन्दावन मधि मधुरितु आई अति छवि पाइ सुहाई।
कु ज कु ज सुखपु ज मधुप गु ज कोकिला सुर की झाई।
विलसत है अपनी सचि सपति दपति के विनोद अधिकाई।'

मिलन मे शरद की रात्रि अत्यन्त ही सुन्दर और मनोरम प्रतीत होती है। पूर्व दिशा में पूर्ण चन्द ने आकर विहार करने का उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत कर दिया है। यमुना का तट अत्यन्त ही कुसुमित और पृथ्वी पर अपनी समानता नहीं रखता। द्रुम और लताये अपनी आभा को सघनता के रूप में फैला रही हैं। त्रिविध पवन प्रवाहित होकर रसमय वातावरण प्रस्तुत कर रहा है। ऐसे वातावरण मे कृष्ण और राधा का विहार हो रहा है। प्रकृति इस विलास को अधिक रसमय कर रही है—

देखि सुहाई सरद की जामिनि रस भीनी ।
पूरन ससि प्राची उदै विहरनि रुचि कीनी ।
मोहन मदन गुपाल को वृन्दावन मोहै ।
जमुना तट कुसुमति महा अवनी मनि सोहै ।
जोति जगमगै द्रुमलता अति सघन सुहाये ।
त्रिविध पवन सुख मे बहै कहियै सु कहाए ।

यदि दम्पति आनन्दातिरेक मे हैं तो प्रकृति भी उनकी सहायक ही है । यह नहीं कि उनके विलास में कोई बाधा उत्पन्न कर रही हो । यदि राधा और कृष्ण हिलमिल करके विलास मे उन्मत्त हैं तो प्रकृति भी उनके रङ्ग में अत्यन्त सहायक है । उनके योग में प्रेम के उपभोग करने की रीतियो को प्रकृति भी देख रही है—

'महानिसा जकि थकि रही ससि कढनि कढ्यौ है'

प्रकृति का यह उद्दीप्तकारी रूप सयोग के सुखों में अत्यन्त ही मनोरमता के साथ कवि ने देखा है। वृन्दावन की सुरम्य और रमणीय वनस्थली कुछ ऐसी सुन्दर है कि राधा को उन द्रुम बेलियो से पहिचान सी होगई है। और हो भी क्यो न ? उनके विलास को तीव्र करने में इन रमणीय दृश्यो का ही तो अधिक हाथ है—

'निहारयौ वृन्दावन सुख खानि
द्रुम बेलिन सो भई भलेई इन ऑखियन पॅहिचान ।'

रूप-शालिनी राधा को कुञ्जो में घूमना ही अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। इसीलिए वह अधिकतर सघन कु जो में ही घूमती कवि को मिलती हैं—

'आवति चली कु ज गह्वर ते कुँवरि राधिका रूप मढी'

गोपियो को बसन्त का आगमन आनन्द से प्लावित कर देता है। वे उसके स्वागत में आनन्द की अभिव्यक्ति करती हैं। राधा और कृष्ण के विहार के उपयुक्त साधन बसन्त ही जुटा सकेगा। जमुना तट के अनेको कु ज जो कि उनकी कीडास्थली हैं पुष्पो से आच्छादित हो जायेगे और पराग की सुगधि व्याप्त हो जायेगी। भ्रमरों की पक्ति मदमत्त होकर अपने सङ्गीत से वहाँ के

[illegible] ऐसे बसन्त का स्वागत करना स्वाभाविक ही है—

'बसन्त फूली [illegible]'

प्रीति पावस में प्रकृति की शोभा का जो चित्रण किया है वह अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक है। वर्षा भी ब्रज में आकर के धन्य हुई। घटाओं के घिरने से जब अन्धकार छा जाता है तब [illegible] गिरधारी प्रफुल्लित होकर वन में घूमते फिरते हैं। वृन्दावन में सदा आनन्द का ही साम्राज्य है। इधर वर्षा की झड़ी लग रही है, समीप ही यमुना का प्रवाह है तथा सघन वनों की शोभा भी अपनी छटा दिखा रही है। कोकिल की मधुर ध्वनि उस वनस्थली को गुंजित कर रही है। बादलों की प्रिया दामिनी अपनी चमक दिखा रही है। बादलों की घनघोर गर्जन ब्रज पर आनन्द की दुन्दुभी के समान है। कदम्ब के वृक्ष फूल रहे हैं और उन पर अलियों के पुंज मँडरा रहे हैं। कृष्ण की मुरली की ध्वनि में मल्हार राग निकल रहा है। कुंजों में झूले पड़े हुए हैं। ब्रजवासियों के हृदय आनन्द के हिंडोलों पर झूल रहे हैं—

मधुर प्रेम पावस के गीत। रस निधि राधा मोहन मीत।
अमित लतागन फूलनि छाये। सोभित बन के सदन सुहाये।
फूले सरस कदंबन पुंज। महा मनोहर मधुकर गुंज।
झुरमुट झूला बगर बगर है। सावन के सुख डगर डगर है।

वर्षा की थोड़ी थोड़ी बूँदें दम्पति को बहुत अच्छी लगती हैं। नव यौवन से युक्त दोनों इन बूँदों के आनन्द के कारण स्पर्श और आलिंगन के सुख में प्रवृत्त हो जाते हैं—

'बूंदे थोरी थोरी बहुत नीकी लागै'

इस प्रकार के अनेकों चित्रण घनानन्द के काव्य में भरे पड़े हैं। प्रकृति की गोद में ही उनके राधा और कृष्ण की विलासलीला चलती है। किंतु जो प्रकृति संयोग के क्षणों को अत्यधिक रसमय और मनोरम बनाती है वही प्रकृति वियोग के थपेडों से अपना भी रूप बदल देती है। संयोगिनी ऋतुओं के आगमन पर आनन्दातिरेक से उछलने लगती है किन्तु विरहिणी के लिए प्रकृति के यह सब रूप विषम ज्वाल के समूह के समान हो जाते हैं। महा-

वसन्त के दिन उसको दुःखदायी हैं कि विरहिणी का [illegible] गात के समान ही पीले होते हैं। लताओं के फूलों को देखकर तथा तमालों की डालियों में झूलों को देखकर वियोगिनी के शरीर पर पीलापन छा रही है। मलयानिल के झोंकों का स्पर्श संयोग में प्रफुल्लित करता है किन्तु विरहिणी के लिये उसका स्पर्श दुःखद है —

आसर बसन्त के [illegible] हौं [illegible] पन्त लेत,
एक दिन पारैं जु निहारैं दिन रात है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै झूलनि का
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घन-आनन्द सुजान ! सुनो बाल दसा,
चन्दनि पवन त पजरि सियरात है।

प्रिय का परदेश मे रहना पावस में कितना दुःख देता है इसे विरहिणी का हृदय फूट फूट कर बताता है। सयोग मे आनन्द का उपभोग करने के पश्चात् वियोग मे दुःख का भार कितना कठिन होजाता है। प्रियतम के लिये सदेश भेजे किन्तु उस निष्ठुर ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। विरहिणी उस पर अत्यन्त दुखित है। वह अपनी अन्तरग सखी से इस निष्ठुरता को प्रकट करती है—

छाये परदेश जान प्यारे सग लै सन्देश,
मो मन अन्देस आली साँसनि रूँधै गरै।
मोरन की कूकें सुनि उठति हिये मे हूकें
चूकै नहीं तातिक करे जो कढिवो अरै।
दामिनी की कोंध लखि चौंधनि मरत चख
अङ्ग अङ्ग सीगीयौ समीर परसे जरै।
घेरि घूटि मारै चहुँधाते घन आनद यो,
बादर अडबरनि डावाँडोल ज्यो करै।

विद्यापति मे भी प्रिय के परदेश रहने पर वियोगिनी उसकी निष्ठुरता को इसी प्रकार अपनी सखी से व्यक्त करती है—

बरसि बरसि घन आनन्द [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] ढरै ॥

आलङ्कारिक रूप मे प्रकृति के चित्रण मे कवि ने कई स्थान पर अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। प्रकृति विरहजनित वेदना को स्पष्ट करने तथा उसे मूर्तिमत्ता प्रदान करने मे सहायक हुई है।

प्रकृति का स्वतन्त्र रूप प्रकृति का संश्लिष्ट-चित्रण रीतिकालीन कवियो मे बहुत ही कम पाया जाता है। बिहारी, देव, पद्माकर आदि सभी कवियो ने प्रकृति को उद्दीपन रूप मे ही देखा। केवल कुछ बिहारी के दोहे और कुछ कवित्तो मे सेनापति ने स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण को स्थान दिया है। घनानन्द ने भी इस क्षेत्र मे रीतिकालीन कवियो अथवा अपने अग्रज कृष्णभक्त कवियो के पीछे चलकर प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही देखा। किन्तु फिर भी जिस वनस्थली के बीच उनके प्रिय इष्टदेव राधा और कृष्ण ने अपनी लीलाओ का प्रदर्शन किया था उसके स्वतन्त्र रूप का भी उन्होने देखा। बसत वर्णन मे इस प्रकार का वर्णन कुछ मिल जाता है किन्तु वह भी अधिक नहीं—

> वृन्दावन आनन्द घन राजत यमुना कूल।
> सदा सुखद सुन्दर सरस, सब ऋतु रूचि अनुकूल॥
> रितु औरै मोरै नवल वृन्दावन तरु बेलि।
> सहज सुहायो देखिये आनन्द घन रसकेलि॥

आगे चौपाइयो मे भी इसी प्रकार का स्वतन्त्र चित्रण मिलता है किन्तु अधिक नहीं—

> घुमड़ि पराग लता तरु भोये। मधुरित सौरभ-सौंज सभोए॥
> बन बसत वरनत मन फूल्यो। लता लता झूलनि सग झूल्यौ॥

प्रकृति के स्वतन वर्णन की यह विशेषता घनानन्द के प्रकृति-चित्रण को रीतिकालीन कवियो के प्रकृति चित्रण से उच्चकोटि का सिद्ध कर देती है। जिस प्रकार भाव की प्रधानता के द्वारा उन्होने रीतिकाल के वाह्य-चित्रण को

प्रेमतत्व का निरूपण

प्रेम की व्यापकता— मानव स्वभाव का यह विशेष गुण है कि वह अपने जीवन में किसी का होना चाहता है। अपने हृदय का प्रसार वह अपने तक ही सीमित न रखकर अन्य लोगों के हृदय के साथ भी उसका सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि वह अन्य जीवधारियों के सुख दुख में शामिल होता है। उनके साथ सहानुभूति और समवेदना का प्रदर्शन करता है। ऐसा करने में उसके हृदय को एक अपरिमित आनन्द प्राप्त होता है। मनुष्य की इसी उदात्त और निस्वार्थ भावना के फलस्वरूप अन्य पुरुष भी उसकी ओर आकर्षित होकर अपने हृदय में उसके लिए एक स्थान सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से पारस्परिक आकर्षण का सूत्रपात प्रारम्भ हो जाता है। हृदय की इसी विशालता से प्रेम का प्रारम्भ होता है। यही पारस्परिक आकर्षण संस्कार और शिक्षा के द्वारा और भी व्यापक होता जाता है और जिस हृदय में एक मानव के लिए ही स्थान था वही धीरे-धीरे मानव जाति के लिये हो जाता है। पारस्परिक आकर्षण में साहचर्य्य का बड़ा योग है और यदि यह कहा जाय तो और अधिक उचित होगा कि प्रारम्भ में मनुष्य एक दूसरे के प्रति साहचर्य्य के कारण ही आकर्षित होता है। परिवार के लोगों के प्रति उसका प्रेम इसी कारण है कि उन लोगों के बीच में वह जन्म से रहता है इसलिए वहाँ पर उसको यह आवश्यक नहीं कि उसके परिवार के लोगों में उसके प्रति सहानुभूति अथवा समवेदना की भावना है कि नहीं। पारिवारिक प्रेम मूलतः साहचर्य के कारण ही होता है। किन्तु वहाँ पर भी यदि कोई मनुष्य कुछ ऐसा कार्य करता है जिसमें वह परिवार के हित से अपने हित को अधिक महत्व देता है वहीं पर पारिवारिक प्रेम का निर्मल जल स्वार्थ की मिट्टी से दूषित हो जाता है। इसलिए प्रेम के प्रसार में व्यक्तिगत स्वार्थ को महत्व देना एक व्यवधान बन जाता है।

हा था । इस प्रेम में मांसलता और स्थूलता को कोई स्थान नहीं था क्योंकि कवि ने संयोग में भी अपने हृदय को ही सुजान का किया था । उसने सुजान से प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं मांगा । केवल उसके सौन्दर्य से ही अपनी तृप्ति करता रहा । किन्तु वह भी भाग्य में न रहा गया और अन्त में उस दर्शन सुख से भी उसे वंचित होना पड़ा । घनानन्द ने अपने प्रेम की इस परवशता को ही अपने काव्य में चित्रित किया है । यही कारण है कि उनका प्रेम अनुभूति प्रधान है ।

साहित्य में प्रेम के विभिन्न रूप—भारतीय साहित्य में प्रेम के विभिन्न रूप हैं । ऊपर लौकिक प्रेम के दो पक्षों पर प्रकाश डाला गया—जिसमें प्रथम शारीरिक आकर्षणजन्य प्रेम और द्वितीय अनुभूति प्रधान प्रेम । वास्तव में काव्यक्षेत्र में प्रेम का प्रादुर्भाव सौन्दर्य के कारण ही हुआ है और उसी का उदात्त रूप अनुभूति प्रधान हो गया है । इस प्रकार एकही वस्तु को भिन्न-भिन्न प्रकारों से देखा गया है । इसी लौकिक अनुभूति से आगे बढ़कर जब अनुभूति पारलौकिक सत्ता के प्रति हो जाती है तो उसी को ईश्वरोन्मुख प्रेम की संज्ञा दे दी जाती है । ईश्वरोन्मुख प्रेम में भी साकार के प्रति प्रेम होता है और निराकार के प्रति भी । साकार ईश्वर के प्रेम में राम और कृष्ण आदि के प्रेम के परम्परा से वर्णित रूप को ही कवि अपनी कल्पना के द्वारा अनेक रूपों में प्रस्तुत करता है । किन्तु निराकार के प्रति जो उसका प्रेम होता है उस पर वह एक रहस्य का आवरण डाल देता है । इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रेम की चार धारायें आदिकाल से चली आरही हैं- १-लौकिक प्रेम, २-पारलौकिक प्रेम । लौकिक प्रेम को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—१-स्थूल प्रेम अथवा शारीरिक प्रेम और २-अनुभूति प्रधान प्रेम । पारलौकिक प्रेम के भी दो विभाजन होते हैं—१-सगुण के प्रति और २-निर्गुण के प्रति रहस्योन्मुख प्रेम ।

हिन्दी काव्य की प्रेम धारा इन चारों धाराओं में विभाजित होकर ही साहित्य के सागर को प्लावित करती रही है । किन्तु शारीरिक प्रेम अथवा स्थूल प्रेम प्रत्येक युग में अपनी सत्ता किसी न किसी प्रकार बनाये रहा । हिंदी ही नहीं उसकी माँ अपभ्रंश तथा मातामही संस्कृत भी इस स्थूल प्रेम को ही

नैन गोलाचोल दिवस लिखी लिपि।
नयन चभाचोल पिया पथ हेरि॥

भक्तिकाल में सूर के कृष्ण और राधा का प्रेम भी 'नैन नैन मिल परी ठगोरी' के उपरान्त ही प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण 'भ्रमरगीत सार' अनुभूति प्रधान प्रेम से ही ओतप्रोत है। गोपियों के प्रेम में जो अनन्यता है वही उच्च प्रेम की परिचायक है। गोपियों को किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं वह तो चातक के समान अपने प्रिय कृष्ण के दर्शन की ही लालसा रखती हैं। उनके जीवन का उद्देश्य प्रिय के दर्शन मात्र के लिये ही है। ऊधो के निर्गुण ब्रह्म की महत्ता इस अनन्य प्रेम के सन्मुख विलीन हो जाती है। गोपिया अपनी अनन्यता को किस स्वाभाविकता से व्यक्त करती हैं—

'ऊधो मन नाँहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को आराधै ईस॥'

भक्त कवियो ने किसी साँसारिक आलम्बन को अपने प्रेम का लक्ष्य नहीं बनाया। उनके प्रेमी राम और कृष्ण थे। इसलिये इन भक्तो ने अपने इष्टदेव के सौन्दर्य का जो वर्णन किया वह भी लौकिक प्रेम से ऊपर था। अपने इष्टदेव के रूप का ध्यान उनको अपरिमित आनन्द देता था। ईश्वर के प्रेम ने उनकी सम्पूर्ण वासनाओ को कुण्ठित कर दिया। राम और कृष्ण उनको इस ससार के सम्पूर्ण कुचक्रो एव यातनाओ से मुक्त करेंगे इसलिये वे उनका स्मरण करते थे।

सूफी कवियो मे प्रेम का आधार लौकिक था किन्तु बीच बीच में वे उस प्रेम को अनत सत्ता के प्रति भी दिखाते थे। जायसी के 'पद्मावत' मे कवि ने राजा रत्नसेन का शारीरिक सौन्दर्य के प्रति ही आकर्षण दिखाया है किंतु फिर विरह की व्याकुलता मे पद्मावत मे जो उद्गार हैं उनमे अनुभूति की प्रधानता स्पष्ट दिखाई दे रही है। नागमती के विरह वर्णन में शारीरिक ललक भी स्पष्ट है। सूफियों में शारीरिक मिलन को अधिक महत्व दिया गया। इसका कारण हम पीछे कह चुके हैं कि सूफियो के प्रेम मे मादन भाव की प्रधानता थी इस कारण उनके प्रेम में कामोद्दीपन को प्रमुख स्थान मिला।

मतिराम के प्रेमी भी अपनी नायिका के अङ्गों तक ही अपने प्रेम को सीमित रखते हैं। कभी उस मुख के लिये वह 'लला' दिन में ही 'रात' लगाते हैं। कभी भीतर लौटकर अपनी प्रेयसी से पानी मंगाने का उपक्रम करते हैं। इस प्रकार रीतिकालीन कवियों के काव्य में प्रेम नामक उदात्त भाव नायिका के अङ्गों के प्रति आकर्षण मात्र बनकर रह गया था।

घनानन्द का अनन्य प्रेम—घनानन्द का प्रेम उनके लिए एक साधना थी। वह उस प्रेम की देवी के उपासक थे जिसकी स्मृति उनके अङ्ग अंग में समा गई थी। उनके लिये प्रेम कोई उथला तालाब या झील नहीं वह तो अथाह सागर था। उस सागर को छोड़कर उनको कुछ नहीं सुहाता—

'एकै आस एकै बिश्वास प्रान गहै बास,
और पहिचान इन्हें रही काहू सो न है।'

यदि प्रिय, जो अनेक गुणों की निधि है, वह ही इन प्राणों की उपेक्षा करेगा तो इन प्राणों की क्या दशा होगी—

नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हू जे,
ऐसौ तुम करौ तौ बिचारन कै कौन है।'

घनानन्द की प्रेमिका को तो अब जीवन भर प्रिय की स्मृति करना ही रह गया है। वह प्रेम के सागर में उतर पड़ी है। प्रियतम के मन में जो आये वह करे, उसे इसकी तनिक भी परवाह नहीं। अब तो केवल प्रिय की बातों में ही जीवन को व्यतीत करना चाहती है। प्रेमिका अपनी दशा की तनिक भी चिंता नहीं करती। उसे तो प्रेम में यदि अपना जीवन ही बलिदान करना पड़े तब भी वह अपने प्रेम की सफलता ही मानेगी। घनानन्द की प्रेयसी अपने प्रियतम की उपेक्षा को सहकर भी उसके प्रति अपने अनन्य प्रेम का परिचय देती है—

'तुम नीके रहौ तुम्हे चाह कहा पै असीस हमारियौ लीजिये जू।'

घनानद के प्रेम मे चातक के प्रेम की अनन्यता परिलक्षित होती है।

प्रेयसी ने अपने प्रेम को इतना व्यापक रूप दिया है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसके प्राणों मे केवल प्रिय की स्मृति ही को स्थान है। उसके हृदय में अन्य किसी भी बात के लिये स्थान नहीं—

मन माहिं जो तोरन ही, तो कहौ
निसासी सनेह क्यो जोरत है ।

हृदय की कसक उस प्रेमिका को नेनीन कर देती है। वह अपनी गलती को अन्य लोगो के लिये सबक बनाती है। उसे इस बात की चिता नहीं कि उसके प्राण इस प्रकार प्रेम मे घुट घुटकर निकल जायँगे। उसकी वेदना मुख- रित होकर यही पुकारती है कि भविष्य मे अन्य लोगो को कभी भी किसी 'अमोही' से प्रेम नही करना चाहिये—

'प्रान मरगे भरगे बिथा पै
अमोही सा काहू को मोह न लागो।'

जीवन से उदास होने पर भी प्रेयसी अपने प्रियतम के दर्शनो की इच्छा को अन्त तक नही छोड़ती—

'जीवते भई उदास तऊ है मिलन आस
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे।'

घनानन्द के प्रेम का अगाध समुद्र अनेक भावनाओ की लहरो से तरगित है। प्रेम पथ का यह पथिक अनेको बाधाओ को चीरता हुआ भी अपने मार्ग से विचलित नही होता। उनके प्रेम के उदात्त रूप को देखकर ही किसी ने उनके विषय मे ठीक ही कहा था—

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सुकहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनिके सब के मन लालच दौरै पै बौरे लखै सब बुद्धि चकी॥
जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रवीननि की मति जाति जकी।
समुझै कविता घन-आनन्द की हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥

प्रेम की अनेको अवस्थाओ तथा मार्मिकता को घनानन्द ने अच्छी तरह समझा। उनका काव्य उनके प्रेम की उस उच्च चोटी पर ले जाता है जहाँ से ससार के अन्य लोगो की प्रेम भावना अत्यन्त ही उथली और अस्थिर प्रतीत होती है। यही मूल कारण है जिससे घनानद को हम उन रीतिबद्ध कवियो की भीड़ से अलग एक स्वच्छन्द प्रेमी कवि के रूप मे ही देखते हैं।

प्रिय था कि विरक्त होने पर भी इन्होंने उसे नहीं छोड़ा। यद्यपि अपने पिछले जीवन में घनानन्द विरक्त भक्त के रूप में वृन्दावन जा रहे पर इनकी अधिकांश कविता भक्तिकाव्य की कोटि में नहीं आयेगी, शृङ्गार की ही कही जायेगी। लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही ये पीछे भगवत्प्रेम में लीन हुए।' प्रथम शुक्ल जी ने इनको निम्बार्क मतानुयायी कहा और साथ ही यह भी कहा कि इनको विराग होगया किंतु बाद में कहते हैं कि उनकी कविता भक्त कवियों की कोटि में नहीं आएगी। साथ ही यह भी कहते हैं कि सुजान का लौकिक नाम ही उनके इष्टदेव के रूप में व्यवहृत होने लगा। अब प्रश्न उठता है कि जो आदमी अपने लौकिक प्रेम के आधार पर ही अपने इष्टदेव की पूजा में रत हुआ हो तो उनको विरक्त भक्त कैसे माना जा सकता है? भक्त को लौकिक सुख और दुःख की क्या चिन्ता?

वियोगी हरि के एक छप्पय में इनको वैष्णव भक्त कहा गया है किन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि यह निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे अथवा किसी और वैष्णव सम्प्रदाय के :—

> बादशाह ने कोपि राज्य ते याहि निकारयो।
> वृन्दावन मे आय वेष वैष्णव को धारयो।
> प्यारे मीत सुजान सौं नेह लगायो।
> लगन बान ते विध्यो विरह-रस मत्र जगायो।

लाला भगवानदीन जी ने भी इनको निम्बार्क सम्प्रदाय का नही बताया। इन्होंने इनकी विरक्ति का कारण इनका रासलीला के प्रति प्रेम माना है—"इस रास की भावना का इन पर ऐसा प्रभाव पडा कि ये श्रीकृष्ण की लीला मे रहने के लिये दरबार तथा गृहस्थी से नाता तोड़ वृन्दावन चले आये और वहाँ किसी व्यास वंश के साधु से दीक्षा ले ये किसी उपासना मे मग्न और दृढ हो गये।'

दीन जी के कथनानुसार इस बात का पता नही लगता कि घनानद किस प्रकार के वैष्णव थे। उन्होंने स्पष्ट न होने के कारण ठीक लिखा है—'कि वे

भावना के तत्वो को भी देखा और वैष्णव भक्ति की सगुण भावना को भी किंतु बाद मे उन पर वैष्णव भावना का प्रभाव पड़ा और वह वैष्णव कवियो की परम्परा मे आ गये। बहुगुनाजी की इस परिवर्तन का क्या आधार है? इसका उन्होंने कोई प्रमाण देना भी उचित नहीं समझा। किंतु बिना आधार के इतने बड़े कवि के विषय मे यह कैसे अनुमान लगा सकते हैं कि वह रग बदलते रहते थे।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने स्वच्छन्द कवियों के विषय में अपना मत देते हुए केवल इतना सकेत किया—"स्वच्छन्द कवियो मे सूफियो के सम्पर्क और प्रभाव के कारण कहीं कहीं रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना मे मेल खाती हुई इन कवियो की वृत्ति कृष्ण-भक्ति-भावना मे लीन हुई। बात यह थी कि इन कवियो मे से कई अपने व्यक्तिगत जीवन मे प्रेम की स्वीकृति उचित परिमाण मे न पाकर, या उसमे किसी प्रकार की लौकिक बाधा उत्पन्न हो जाने के कारण ये ससार से विरक्त हो गये। ऐसी दशा मे उनके लिये दो ही मार्ग थे। या तो ये निर्गुण सम्प्रदाय का अनुगमन करते, या सगुण सम्प्रदाय मे दीक्षित होते। निर्गुण मे रूप की योजना न होने के कारण उसकी उपासना इनके चित्त के लिए अभिमत नही हो सकती थी, अत: इन्होंने सगुण मे अपनी स्वच्छन्द वृत्ति लीन की। रसखान और घनानद दोनो ने ही प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्तन किया है।" मिश्र जी ने इस प्रकार घनानद को प्रेमाभक्ति मे लीन कवि के रूप में ही ग्रहण किया है। उन्होंने इस मत की पुष्टि के लिए घनानद का निम्नलिखित कवित्त उद्धृत किया है—

> ज्ञान हूतै आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
> रस उपजावै तामै भोगी भाग जात ग्वै।
> जान 'घनआनद अनोखो यह प्रेम-पन्थ,
> भूले ते चलत रहैं सुधि के थकित ह्वै

प्रेम के पन्थ से प्रभावित होकर ही घनानद ने कृष्ण भक्ति को स्वीकार

घनानन्द पर अन्य प्रभाव

ऊपर हम कह चुके हैं कि विभिन्न विद्वानों ने घनानद के भक्ति सप्रदाय के विषय मे अपने अपने मतो का प्रदर्शन किया है। शुक्लजी ने उनको निम्बार्क सम्प्रदाय मे दीक्षित किया किंतु फिर भी भक्त कवि नहीं माना। इसी प्रकार का मत वियोगीहरि का भी है। दीनजी किसी भी निश्चय पर नहीं पहुँच सके श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने उनको रहस्योन्मुख प्रेम मार्गी सन्तो में स्थान दिया लेकिन इन सम्पूर्ण मतो मे मान्यता उसी मत को मिल सकती है जो किसी तथ्य के आधार पर हो। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने श्री प० रामचन्द्र शुक्ल के मत को माना है। उनके कथन मे कुछ सत्य भी है क्योकि उन्होने किसी सम्प्रदाय विशेष पर अधिक जोर न देकर इनको प्रेमोमग का कवि कहा है। वास्तव में घनानद ने भी भक्ति की किसी एक परम्परा को नहीं अपनाया। इनके काव्य मे राधा-कृष्ण की अनेको लीलाओ का वर्णन है—कही झूला झूलते, कही विहार करते, कहीं विनोद और अन्य किसी क्रीड़ा मे रत। घना-नद ने यमुना, ब्रजभूमि, गोवर्धन आदि अनेक स्थानो को भी अपने काव्य में वर्णित करके अपने ब्रजभूमि के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किया है। बशी की महिमा को भी घनानद ने अनेक स्थानो पर उसी प्रकार वर्णित किया है जिस प्रकार सूरदासजी ने अपने काव्य मे स्थान दिया। घनानद की पदावली को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उसमे उन्होने अन्य भक्त कवियो का अनुकरण किया है। जिस प्रकार हित-वृन्दावन आदि कवियो ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को अपने काव्य मे वर्णित किया है इस प्रकार का कोई भी प्रतिबध घनानद के काव्य पर नहीं रहा। इनके काव्य की मुख्य धारा प्रेम है और उस प्रेम की पुष्टि के लिये ही इन्होने अपने से पूर्ववर्त्ती उन सम्पूर्ण काव्य परम्पराओ को अपनाया जो कि उनकी प्रेम व्यजना मे सहायक हो सकती थीं। घनानद ने अपने भग्न हृदय का सम्बल राधा और कृष्ण को बनाया किंतु उनके हृदय में सुजान की मूर्ति सदा रही। कृष्ण को भी उन्होने अपनी प्रेमिका के नाम से ही विभूषित कर दिया। इसलिये यह कहना सरल नहीं कि घनानद किस प्रकार की भक्ति-पद्धति मे विश्वास करते थे।

घनानद के काव्य को देखने से स्पष्ट है कि उन पर पूर्ववर्त्ती परम्पराओं

का पूर्ण प्रभाव था। सूफी सन्तो का प्रभाव उनकी रचनाओ मे मिलता है। इसके अतिरिक्त निगुर्ण-धारा का प्रभाव भी कहीं कहीं पर है। कृष्णभक्त कवियो ने तो इनको अपने रग मे ही रँग लिया। रीतिकालीन शृङ्गारिक भावना भी इनके काव्य मे कहीं-कहीं पर बड़ी प्रखरता के साथ है। कारण यह था कि इन्होने अपने प्रेम के चित्र को प्रखरता देने के लिये ही उन सम्पूर्ण तत्वो को अपने काव्य में स्थान दिया।

वैष्णवो में कृष्ण के लोक रंजक रूप को ही अपनाया गया था। राधा की उपासना इन वैष्णव आचार्यों मे निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य ने ही अपनाई थी। सम्भवतः घनानन्द ने जो राधा की उपासना और महत्ता का प्रतिपादन किया है वह निम्बार्क सम्प्रदाय के कारण ही किया हो। किन्तु उनकी अन्य रचनाओं मे कृष्ण की लीलाओ को जो प्रमुखता दी गई है वह सब सूरदास आदि वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियो की सी ही प्रतीत होती है। इसलिए यह विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि इनके ऊपर केवल निम्बार्क सम्प्रदाय का ही प्रभाव था।

सूफीमत और घनानन्द—कुछ लोगो का कथन है कि घनानन्द ने सूफियों की प्रेम की पीर को भी अपने काव्य में स्थान दिया। सूफियो मे प्रेम की पीर को अधिक महत्व दिया गया है तथा सूफियो के काव्य मे विरह को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। कुतुबन, जायसी और मझन आदि कवियो की रचनाओ में प्रेम की कसक आदि से लेकर अन्त तक चलती है। नागमती के विरह वर्णन में जायसी ने जिस प्रेम को व्यजित किया है वह अपनी समानता नहीं रखता। सूफियो के मतानुसार सम्पूर्ण सृष्टि उस अनन्त प्रिय के वियोग में रो रही है। घनानन्द के काव्य मे भी इस सूफी पीर की झलक अनेक स्थानो पर है किन्तु अन्तर केवल यही है कि जहाँ सूफियो ने उस अज्ञात सत्ता का आवरण डालकर उसे रहस्योन्मुख बनाया है वहाँ घनानन्द के काव्य में केवल अपने हृदय की वेदनाओ को प्रखर रूप देने के लिये ही उस पद्धति को अपनाया है। सूफियो ने लौकिक प्रेम के द्वारा ही आध्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति मानी। जायसी के 'पदमावत' मे लौकिक कथा को ही पारलौकिक प्रेम के लिये चुना है। सयोग और वियोग दोनों वर्णनो मे कवि

मे प्रभावित किया। कृष्ण भक्तो के अन्दर आकर जो विरह का रूप परिलक्षित हुआ वह वैष्णव आचार्यों का प्रभाव था। सूरदास आदि कवियो ने उस विरह को अपने काव्य मे अधिक महत्व दिया। सपूर्ण कृष्णकाव्य विरहिणी आत्मा (गोपियो) का ही रुदन है। सूर की गोपियाँ अपने प्रिय के वियोग मे आसुओं की धारा बहा चुकी थी उसका प्रभाव घनानद के विरह व्यथित हृदय पर भी पड़ा। इसलिये यह कहना कि सूफियो की विरह वर्णन की पद्धति को अपनाकर ही घनानद ने अपने काव्य मे विरह को इतना प्रमुख स्थान दिया न्यायोचित नही।

सूफियो का प्रभाव पड़ा और वह केवल घनानद पर ही नही वरन् उनसे पूर्व के कृष्ण भक्त कवियो पर भी पड़ चुका था। किंतु वह केवल इस कारण कि सूफियो की प्रेम-पद्धति मे सामाजिक व्यवधान की कमी थी और वह एक ऐसी तडपन को लेकर चला था जो उस समय के विलासप्रिय वातावरण के उपयुक्त था। नागरीदास आदि मे इसके दर्शन होते हैं। घनानद ने भी इसी प्रकार सूफी प्रभाव मे आकर कुछ रचनाए की। किंतु उनके इतने बडे काव्य को देखकर यह नगण्य ही है। 'वियोग वेलि' और 'इश्कलता' मे यह प्रभाव परिलक्षित होता है—

लिखो कैसे पियारे प्रेम पाती।
लगै अँसुअन झरी ह्वै टूक छाती॥

इसी प्रकार कटाक्षो का बाण हो जाना आदि प्रयोग भी सूफी प्रभाव को दिखाते हैं—

सलोनी स्याम मूरति फिरै आगे।
कटाछे बान से उर आन लागे॥
मुकट की लटक हिय मे आय हालै।
चितवनी बक जियरा बीच सालै॥

किंतु यहाँ पर भी शैली का प्रभाव है। फारसी काव्य मे हृदय का टुकड़े-टुकड़े होना, माँस का गलजाना आदि वीभत्स दृश्यो को भी वर्णित किया

जाता है। जायसी ने भी इस प्रकार का प्रयोग अपने काव्य में किया है—

'विरह सरागन्हि भू जैसि मॉसू।'

'इश्कलता' में भी घनानद पर कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है—

दीजे इनन् सीख सलोने साँवरे।
खून करै ये नैन हुये लड़ बावरे॥
खूनी कीये जाय करेजे घाव हैं।
आनँद-जीवन जान न और बचाव है॥

यदि घनानद के काव्य मे इस प्रकार के स्थलो को देखा जाय तो वह बहुत कम हैं। वास्तव में घनानद एक प्रेमी थे और उनका प्रेम भी कुछ इतना घनीभूत होगया था कि उसे जिधर ही अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग मिला उधर ही उसकी धारा प्रवाहित हो चली। सूफियो की प्रेम पद्धति के दार्शनिक पक्ष से उनको कोई भी तात्पर्य नहीं था। उनको यदि उनकी शैली कहीं अच्छी लग गई तो उन्होने उसको अपना लिया। इसलिए इन कतिपय उदाहरणो के द्वारा जो लोग उनमें सूफी प्रभाव की व्यापकता को ढूँढने का कष्ट करते हैं वह उनके साथ अन्याय और अपने समय का दुरुपयोग करते हैं। जहाँ तक उनकी प्रेम की पद्धति का प्रश्न है वह शुद्ध भारतीय ही है।

निर्गुण सन्तों का प्रभाव

कुछ विद्वानों ने घनानद की प्रेम-पद्धति को निर्गुण सतो की रहस्योन्मुख प्रेम-पद्धति से मिलाने का प्रयत्न किया है। श्री शभुप्रसादजी के मत को हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं उनका कथन इसी प्रकार है। किंतु घनानद मे निर्गुण तत्वों का ढूढ़ना भी हास्यास्पद प्रतीत होता है। उन्होने कृष्ण और राधा के साकार रूप का ही वर्णन किया है। किंतु रहस्योन्मुख कवियो मे सगुण का कोई स्थान नहीं। उनके विरह को भी कबीर, दादू आदि सन्तो से प्रभावित बताया है। किन्तु हम ऊपर कह चुके हैं कि कृष्णोपासकों मे यह विरह की तीव्रता वैष्णव आचार्यो के प्रभाव से ही आई थी। इसके अतिरिक्त जयदेव,

हृदय की अशान्ति को मिटाया। कृष्ण का रूप सौन्दर्य उनके लिये आनन्द का स्रोत बन गया। और इस प्रकार के रूप और सौन्दर्य को पाकर ही वह अपनी प्रेमिका के रूप की झाँकी उसमें देख सके।

वैष्णव प्रभाव—महाकवि घनानद की रचनाओं में कृष्ण तथा राधा का वर्णन प्रचुरता से मिलता है और इसी कारण कुछ विद्वानों ने इनको भक्त कवियों की कोटि में रखने का प्रयत्न भी किया है। उनके काव्य में राधा भी प्रमुखता के साथ वर्णित है जिससे कुछ विद्वानों ने इनको निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित कहा है। निम्बाकाचार्य ने राधा की उपासना का अधिक महत्त्व दिया था। इनका कथन था कि राधा और कृष्ण का सम्मिलित रूप ही भक्ति का प्रधान रूप है। इस प्रकार राधा और कृष्ण की युगल मूर्त्ति के साथ शृङ्गार भावना भी भक्ति के क्षेत्र में आगई। राधा का शृ गारिक वर्णन निम्बार्क सम्प्रदाय में भक्ति का रूप माना गया। निम्बार्काचार्य ने राधा के इस रूप को शाक्त प्रभाव से प्रभावित होकर लिया था। यह कहना असत्य होगा कि भागवत के प्रभाव से इन्होंने राधा के रूप को अपनी भक्ति-पद्धति में ग्रहण किया। भागवत में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु राधा का कहीं नाम नहीं आया। एक ऐसी गोपी की चर्चा अवश्य है जो कि कृष्ण के साथ एकान्त में विहार करती है। उस गोपी के भाग्य की सराहना अन्य गोपियों के द्वारा की जाती है कि यह उसका पूर्व जन्म का फल है जो कृष्ण के प्रेम की अधिकारिणी हुई। लेकिन 'राधा' नाम का उल्लेख श्रीमद्भागवत में कहीं भी नहीं। वास्तव में राधा को शाक्तों ने शक्ति के रूप में अपने सम्प्रदाय में बहुत पहले ग्रहण कर लिया था तथा शिव को कृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित करके अपनी भक्ति में स्थान दिया था। प्रथम शताब्दी की रचना गाथा सप्तसती में जो राधा और कृष्ण का रूप मिलता है वह शाक्तों का ही प्रभाव है। (देखिये गीतकार विद्यापति पृष्ठ १८४-८५)

वैष्णव आचार्यों में सर्व प्रथम निम्बार्क ने जनता में परम्परा से प्रचलित राधा-कृष्ण के शृ गारिक रूप को ग्रहण किया। राधा को कृष्ण की शक्ति माना गया। बल्लभ ने राधा के इस रूप को व्यापक बना दिया और इस प्रकार शाक्तों की शृ गार-भावना वैष्णव धर्म में आकर समाहित हो गई। जयदेव

ईश्वर को सम्बोधित किया गया है। सूरदास ने तो प्रत्येक पद में कृष्ण का स्मरण साथ २ होता चलता है किन्तु घनानद के काव्य में अधिकतर सुजान के नाम को ही महत्व दिया गया। कहीं पर तो कवि ने चेष्टाओं का ही वर्णन किया है—

मन उनमाद स्वाद मदन के मतवारे,
केलि के अवारि लौं सवारि सुख सोये हैं।
भुजनि उसी सो धारि अन्तर निवारि जानु,
जघन सुथारि तन मन ज्यों समोए हैं।
सुपने सुरति पागे महाचोप अनुरागे,
सोए हू सुजान जागे ऐसे भाव भोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार शोभा,
भरे रस सार घन आनन्द अछोए हैं॥

घनानद मे भक्ति के तत्वो की न्यूनता थी और शृङ्गार की भावना का प्राधान्य था। उनके काव्य मे केवल पदावली और कुछ अन्य रचनाओ मे ही उन्होने भक्ति का समावेश किया है अन्यथा उनके काव्य का एक बड़ा भाग शृगार और प्रेम की ही अभिव्यक्ति है।

कृष्ण भक्तो का प्रभाव—घनानद की भक्ति-पद्धति को विद्वानो ने कृष्ण भक्त कवियो से प्रभावित कहा है उसमे किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए क्योकि कृष्ण और राधा को ही घनानद ने अपने काव्य मे अधिक स्थान दिया। किन्तु साथ ही उनकी भक्ति-पद्धति के आधार पर उसे निम्बार्क मत से जोडना असगत प्रतीत होता है। ऊपर हम दिखा चुके हैं कि राधा की उपासना निम्बार्क मत मे प्रधान थी और घनानद ने भी अपने काव्य मे राधा को अनेक स्थानो पर देखा है लेकिन साथ ही कृष्ण की लीलाओ को भी उन्होने प्रधानता दी है। वृन्दावन, यमुना - वर्णन, रास, विहार, युगल दर्शन, गोकुल वर्णन, वृषभानुपुर सुखमा, दान लीला आदि अनेको ऐसे विषयो को भी अपने काव्य मे स्थान दिया जो वल्लभाचार्य के द्वारा प्रतिपादित पुष्टि-मार्गी मत का प्रभाव है। सूरदास आदि कवियो ने वल्लभाचार्य के द्वारा

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि घनानद ने कृष्ण और राधा को अपने काव्य मे अधिक महत्व अवश्य दिया किंतु उन रचनाओ के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनका अमुक सम्प्रदाय से सम्बन्ध था । यदि उनके काव्य मे राधा विषयक कवितायें हैं तो साथ ही उन्होने कृष्ण की अनेक लीलाओ और क्रीड़ाओ को भी सूरदास के समान अपने काव्य मे स्थान दिया । विनय के पद भी उनके द्वारा लिखे गये तो साथ ही ससार की असारता को भी उन्होने देखा—

लड़काई प्रदोष मे टोड लग्यो, हँसि रोय सु औसर खोय दयौ ।
बहुर्‌यौ करि पान बिषै मदिरा, तरुनाई तमी मधि सोय लयौ ।।
तजिके रस मे घनआनँद को, जग धूँधरयौ चातिक नेम लयौ ।
जड़ जीव न जागत अजहूँ किनि केसनि ओर ते मोह भयौ ।।

प्रेम की गहराई को तो उनके समान सम्भवत. बहुत ही कम लोग समझते थे। साथ ही रीतिकालीन शारीरिकता का भी उनको पूर्ण अनुभव था। जायसी और कबीर के समान विरह की महत्ता को भी वह समझते थे । इस प्रकार यदि हम यह कहदे कि घनानद केवल निम्बार्क सम्प्रदाय के ही सिद्धान्त को मानने वाले थे तो यह एक निराधार बात ही होगी । घनानद पर अपने पूर्ववर्त्ती निम्बार्क और बल्लभ दोनो सम्प्रदायो का प्रभाव था । उनको भक्त कवि हम किसी दशा मे नहीं मान सकते । मूलत. वह कृष्ण के प्रेम मे लीन थे इसलिये उनको प्रेमी कवि के रूप मे मानना ही न्यायोचित होगा । कृष्णभक्त कवियो ने जीवन पर्यन्त कृष्ण की उपासना के लिये ही अपने काव्य का सृजन किया । किन्तु घनानद के काव्य मे उनके लौकिक प्रेम की व्याकुलता के उद्‌गार हैं । जहाँ तक प्रेम के गीत गाने का प्रश्न है वहाँ तक इस कवि ने अपनी हृतन्त्री के तारो से अनेक स्वरो को निकाल कर प्रेम के वातावरण को गुंजित कर दिया । भक्तो की भावना घनानद मे नहीं वरन् प्रेमियो के से उद्‌गारो का ही प्राधान्य है । व्यावहारिक रूप मे वह कृष्ण की भक्ति को महत्व अवश्य देते थे जो उनकी रचनाओ से स्पष्ट रूप मे परिलक्षित होता

द्वारा प्रेम का खिलवाड़ दिखलाने का उपक्रम किया जाता था। कभी नायिका अँधेरी रात्रि में प्रिय से मिलने के लिए काली साड़ी पहिनती थी, तो कभी चाँदनी में अपने शरीर की कांति को मिलाकर बिना झिझके ही वह प्रियतम से मिलने चल देती थी। किंतु इन प्रेम के दीवान कवियों ने इस प्रकार की लुकाछिपी को अपने प्रेम में नहीं अपनाया। इन कवियों का प्रेम तो जैसा अन्तर में था वैसा ही समाज और जगत के समक्ष भी था। जिस प्रियतम को हृदय में स्थान दे दिया उसको फिर निकाल कर अन्य का ध्यान करना असम्भव था। प्रेम की जिस अनन्यता का बीजारोपण रसखान ने भक्तिकाल में किया था उसी की गूंज इन रीतिकाल के स्वच्छन्द प्रेमियों के हृदय में भी व्याप्त हुई। रसखान ने गोपियों के अनन्य प्रेम को ही अपने प्रेम का आदर्श रखा था। अनन्य प्रेम के कारण ही श्रीकृष्ण 'छछिया भरि छाछ' में नाचते फिरते थे। प्रेम के ऐसे ही रसमय, स्वाभाविक, निस्वार्थ,निश्चल एवं विशुद्ध रूप को ही रसखान ने आदर्श और उच्च प्रेम की संज्ञा दी थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था—

रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल, महान।
सदा एक रस, शुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान॥

स्वच्छन्द कवियों का अनन्य प्रेम—स्वच्छन्द कवि घनानंद, बोधा और ठाकुर का प्रेम भी इसी प्रकार का उच्च प्रेम ही था। प्रेम की अनन्यता इन कवियों का सबसे प्रधान गुण था। घनानंद तो जीवन पर्यन्त अपने प्रेम की एक निष्ठता को ही गाते रहे। उनके हृदय में अपने प्रिय के अतिरिक्त किसी को भी स्थान नहीं—

घन-आनँद प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एकते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढे हौ कहौ,
मन लेत हौ देत छटाक नहीं॥

प्रेम के उच्च आदर्श को ही बोधा कवि ने अपनाया है। उन्होंने कहा है कि संसार में अनेक प्रकार का प्रेम है। जिसे जो रुचिकर हो वह उसी को अपनाये। प्रेम करना तो आसान है किन्तु एक रस रहना ही उस प्रेम की

होता था और वही उनका प्रेम था। किन्तु रीतिमुक्त कवियों का प्रेम अन्तर्मुखी था। हृदय के सच्चे उद्गारों को ही उन कवियों ने अपने काव्य मे स्थान दिया। चमत्कार और विलवाद स उनका कोई प्रयोजन नहीं। घनानद, ठाकुर और बोधा सभी ने अपने काव्यो मे अन्तर्वृत्तियों के चित्रण को ही प्रमुखता दी और इसी कारण यह रीति की परम्परा स निकल कर मुक्त और स्वच्छन्द होकर विचरण करते रहे। इन कवियों की कविता किसी राजा अथवा सामन्त के मनोविनोद का साधन नहीं थी प्रत्युत हृदय के वे उद्गार थे जो अचानक ही किसी ठेस के लगने पर निस्सरित होने लगे थे। इन सम्पूर्ण कवियो मे प्रेम की पीर पर्याप्त मात्रा मे है इसका कारण सूफी प्रभाव हो सकता है। प्रेम की विभोरता इन सब कवियो म किसी न किसी रूप मे पाई जाती है। घनानद पर प्रेम का जो नशा था वह इन दोनो कवियो क नशे से बहुत बढा चढा था। वे तो प्रेम के दीवाने ही थे। बोधा भी प्रेम की मदिरा से थक चुके थे और नशा भी किसी न किसी प्रकार घनानद को ही कोटि का था किंतु उनके काव्य का विषय कथा प्रधान होने से प्रेम की उतनी तीव्र व्यजना नहीं हो पाई जो घनानन्द के काव्य मे मिलती है। फिर भी उनकी कुछ उक्तियाँ इतनी मार्मिक हैं जिनकी समानता प्रेम कवियो की बहुत कम रचनाओ मे मिलेगी। एक स्थान पर कवि के हृदय की अन्तर्मुखी पैठ की सराहना प्रत्येक भावुक मनुष्य को करनी पड़ती है—

कबहूँ मिलिबो, कबहू मिलिबो
यह धीरज ही मे धरैबो करै।
उर ते कढि आवै, गरे ते फिरै,
मन ही मनही मे सिरैबो करै।
कवि बोधा न चाव सरी कबहूँ,
नित ही हरवा सो हिरैबो करै।
कहते ही बनै, सहते ही बनै,
मन ही मन पीर पिरैबो करै।

हृदय की यह परवशता घनानद मे भी अत्यन्त उच्चकोटि की है। प्रियतम

की प्रतीक्षा करते-करते विरहिणी के पलक थक गये हैं तथा प्रियतम का मार्ग नॉपते २ नेत्रो की अवस्था भी बिगड गई है। हृदय व्याकुलता से भग्न हो चुका है ।रात दिन प्रियतम का नाम ही विरहिणी की जिह्वा पर रहता है। विरह की अग्नि में तपकर विरहिणी योग की साधना कर रही है। इस कठिन दशा मे प्राणो की अवस्था अत्यन्त ही दयनीय हो गई है। यद्यपि विरहिणी अपने जीवन से निराश हो चुकी है किंतु फिर भी प्रियतम से मिलने की आशा अत्यधिक बलवती है इसीलिए विरहिणी प्रियतम का नाम पुकार पुकार अपने प्राणो को जीवन दान दे रही है—

जान घन आनॅद यो दुसह दुहेली दशा,
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीवे तें भई उदास तऊ है मिलन आस
जीवहि जिवॉऊ नाम तेरो जपि जपि रे॥

ठाकुर भी इस प्रकार की उक्तियो के द्वारा अपने हृदय की विवशता को व्यक्त करते हैं—

गति मेरी यही निसिवासर है,
चित तेरी गलीन के गाहने हैं।
चित कीनो कठोर कहा इतनो,
अब मोहि नहीं यह चाहने है।
कवि ठाकुर नेक नहीं दरसो,
कपटीन को काह सराहने हैं।
मन भावै सुजान सोई करियो,
हमें नेह कौ नातौ निबाहनो है॥

ठाकुर कवि भी प्रेम के निर्वाह की ओर अधिक ध्यान देते थे। उनको की तनिक भी चिंता नहीं कि उनकी प्रेयसी उनको प्रेम करती है कि नहीं। ानद और बोधा भी इसी प्रवृत्ति को अपना कर चले। घनानद की प्रेयसी केवल अपने प्रिय को ही चाहती है। उसे ससार से कोई तात्पर्य नहीं। पने प्रेम के निस्वार्थ रूप की झॉकी घनानद ने निम्नलिखित पक्तियो में ़स भावुकता के साथ प्रदर्शित की है—

इत बोट परी सुधि गारे भूलनि
कैसे उराहना दीजिये जू ।
ग्रब तो सब सीस चढाय लई,
जु कछू मन भाई सु कीजिये जू ।
घन ग्रानन्द जीवन प्रान सुजान !
तिहारियो बातनि जीजिय जू ।
नित नीके रहो तुम्हे चाढ कहा पै
ग्रसीस हमारियो लीजिये जू ॥

जहाँ तक प्रेम की पीर का प्रश्न है वह इन सभी कवियो मे मिलती है ग्रौर इसी पीर के कारण विद्वानो ने इन कवियो का सम्बन्ध सूफियो की प्रेम की पीर से जोडकर इन प्रेम कवियो पर सूफियो का ही प्रभाव कहा है । श्री विश्वनाथप्रसाद ने ग्रपनी पुस्तक 'घन-ग्रानद' मे ग्रपना मत इस प्रकार प्रदर्शित किया है—"प्रम की पीर सूफी कवियो का प्रतिपाद्य विषय है । ग्रत स्वच्छन्द कवियो ने प्रेम की वह पीर फारसी काव्यधारा की वेदना की विवृत्ति के साथ सूफी कवियो से ही ली है । इसमे कोई सन्देह नही रह जाता ।" किंतु इस 'प्रेम की पीर' का प्रभाव सभी कवियो पर समान नही । घनानद के काव्य मे यह पीर है किंतु जहाँ तक सूफियो के प्रभाव का प्रश्न है वह सब स्थानो पर नही । बात यह थी कि भारतीय साहित्य मे विप्रलभ शृगार को ग्रादिकाल से ही महत्व मिला ग्रौर उसके साथ ही हृदय मे प्रेम की पीड़ा का होना भी स्वाभाविक था । हिंदी के कवि विद्यापति की विरहिणी नायिका भी विरह के कारण ग्रनेक वेदनाग्रो को ग्रपने हृदय मे सहेज कर रखती थी । कृष्णभक्त कवियो मे नागरीदास ग्रादि कवियो पर तो सूफियो का प्रभाव स्पष्ट था किंतु ग्रन्य कवियो मे जो वेदना का रूप पाया जाता है वह शुद्ध भारतीय ही है । हाँ इतना ग्रवश्य है कि कहीं-कही पर यदि सूफी प्रभाव कुछ हो तो यह कोई ग्रसभव भी नही । घनानद के काव्य मे प्रेम की परवशता है वह भारतीय ही ग्रधिक है । केवल कुछ स्थानो पर ही सूफी प्रभाव है । इन कवियो मे बोधा ही ऐसे कवि थे जिन पर सूफियो का प्रभाव ग्रधिक था । प्रेम की पीर भी बोधा मे सूफियो के ग्रनुकरण पर ही है—

जबते बिछुरे कवि बोधा हितू
तबते उरदाह थिरातो नहीं।
हम कौंन सो पीर कहें अपनी,
दिलदार तो कोऊ दिखानो नहीं।

इसके अतिरिक्त कवि बोधा ने माधवानल और कामकन्दला की लौकिक कथा को सूफियो के अनुकरण पर ही ग्रहण किया है। इस प्रकार उन्होने इश्कमजाजी (लौकिक प्रेम) से इश्क हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) को प्राप्त करने में सूफी प्रेम-पद्धति को ही अपनाया है।

ठाकुर कवि पर सूफियो का प्रभाव घनानन्द से भी कम था। यह कवि तो प्रेम का खेल खेलता था और उस प्रेम के खेल मे हार जीत का कोई प्रश्न इनके सन्मुख नहीं था। यदि जीत गये तब भी उन्हें इस खेल को खेलना और यदि हार गये तब भी पीछे नहीं हटना। प्रेम की जितनी दृढ़ता ठाकुर मे है उतनी किसी भी कवि मे नहीं। इनको तो प्रेम करना है। इसकी चिन्ता नहीं कि इनका प्रेम-पात्र इनको प्रेम करता है या नहीं। इसी दृढ़ता के दर्शन इनके काव्य में अनेक स्थलो पर भरे पडे हैं—

का कहिये तुम्हरे मनको, जिनको
अबलो न मिटो दगा दीबो।
पै हम दुसरो रूप न देखिहैं,
आनन आन को नाम न लीबो॥
ठाकुर एक सौ भाव है जौ लगि
तौ लगि देह धरे जग जीबो।
प्यारे, सनेह निबाहिबे को हम
तो अपनी सो कियो अरु कीबो॥

इन प्रेम कवियो ने विप्रलभ शृंगार को ही अधिक महत्व दिया। सयोग के वर्णन में इनका मन नहीं लगा। वियोग श्रृङ्गार मे घनानन्द ने तो अपनी समस्त भावराशि को ही लुटा दिया है। इसके अतिरिक्त वियोग की अनेको अवस्थाओ का चित्रण भी घनानन्द के काव्य में उत्कृष्ट कोटि का है। इस

विषय मे घनानन्द के वियोग शृगार के वर्णन मे हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं।

बोधा कवि पर अन्य प्रभाव —बोधा और ठाकुर के काव्य मे भी वियोग शृगार को ही अधिक महत्व दिया गया। कवि बोधा ने तो 'विरह वारीश' नाम से काव्य ही लिख डाला। ठाकुर के काव्य मे भी वियोग की दशाओ को बडे मार्मिक ढग से दिखाया गया है।

बोधा कवि ने विरह-वर्णन को भारतीय-पद्धति पर ही वर्णित किया है। किन्तु साथ ही उन्होने 'इश्कमजाजी' और 'इश्क हकीकी' का भी उल्लेख कर दिया है जिससे उनके ऊपर सूफियो का प्रभाव भी अपनी धारा के अन्य दोनो कवियो से अधिक प्रतीत होता है—

होय मजाजी मे जहाँ, इश्क हकीकी खूब।
सो साँचो ब्रजराज है, जो मेरा महबूब॥

बोधा कवि ने लौकिक प्रेम की अनन्यता को ही आध्यात्मिक प्रेम की सीढी कहा है। जो ससार मे किसी एक को अपना प्रेम पात्र बनाकर उससे अन्त तक प्रेम का निर्वाह कर सकता है वही वास्तविक प्रेमी है और वही अन्त मे उस ईश्वर के प्रेम को भी प्राप्त करता है। अपनी प्रेयसी के प्रति उन्होने इस रहस्य का उद्‌घाटन इस प्रकार किया है—

'सुन सुभान यह इश्क मजाजी। जो दृढ एक हक दिलराजी।
पढै पढावै समुझै कोई। मिलै हक्क खामिद को सोई॥

अपने प्रिय के वियोग मे बोधा की विरहिणी आत्मा उसी प्रकार छटपटाती है जिस प्रकार घनानन्द की आत्मा सम्पूर्ण 'सुजान चरित' मे अपनी वेदना को प्रदर्शित करती है। बोधा कवि के वियोग की अग्नि तनिक भी ठडी नहीं होती। हृदय की पीर को सुनने वाला भी कही नही दिखलाई देता—

'जबते बिछुरे कबि बोधा हितू
तबते उर दाह थिरातो नही।
हम कौन सो पीर कहैं अपनी
दिलदार तो कोऊ दिखाता नही

ठाकुर कहत जो अधीन थयौ रावरे तौ,
जासो जैसो नातो तासो तैसी ओर पारियो।
ऐरे व्रजराज तेरे पॉव कर जोरे गहौ,
प्रान हू नजर पै न नीयत बिगारियो ॥

शुक्ल जी के शब्दो में ठाकुर की सम्पूर्ण विशेषताये इस प्रकार हैं—ठाकुर बहुत ही सच्ची उमग के कवि थे। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं शब्दाडम्बर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावो का उत्कर्ष। जैसे भावो को उसी ढङ्ग से यह कवि अपनी स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की भाषा में भाव को ज्यो का त्यो सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है।'

ठाकुर कवि की कविता में लोक प्रचलित त्योहारो और उत्सवो को भी स्थान दिया गया जिनमे जनता के उत्साह और उल्लास का सुन्दर चित्रण है। इस दृष्टि से यह घनानद और बोधा से अपनी एक अलग विशेषता रखते हैं।

घनानन्द का स्थान—उपरोक्त विशेषाओं को ध्यान में रखकर जिस समय हम घनानद के काव्य पर दृष्टिपात करते हैं तो हमको उनका काव्य-पक्ष अत्यन्त प्रौढ एव कला पूर्ण प्रतीत होता है। जहॉ बोधा और ठाकुर ने प्रेम के सच्चे उद्‌गारो को अपने काव्य मे अधिक अपनाया है वहॉ घनानद ने लगभग ६०० कवित्त और सवैयो को इसी प्रकार के उद्‌गारों से ओत प्रोत कर दिया है। विप्रलभ शृङ्गार के तो घनानंद सच्चे अधिकारी हैं। अनेक दशाओं का जैसा मार्मिक चित्रण इनके काव्य में है उस प्रकार का बोधा और ठाकुर में नहीं। भावो की सरलता के साथ इस महाकवि ने कला की उच्चता की ओर भी अपना ध्यान रखा है। इनका कला-पक्ष इतना प्रौढ़ एव विकसित है कि उनके द्वारा इनके भावों की शक्ति अपरिमित हो जाती है। जिस स्वाभाविकता एव सरलता से घनानद ने अपने काव्य के भाव-पक्ष एव कला-पक्ष को पुष्ट किया है उससे सिद्ध है कि घनानन्द निस्सदेह बोधा और ठाकुर से अधिक कला पारखी थे। इस प्रकार एक नहीं अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे घनानद की कला का पुष्ट एवं प्रौढ़ रूप दिखलाया जा सकता है।

वियोगिनी की दयनीय दशा के चित्रण मे कवि ने भावोत्कर्ष के साथ २ कला-पक्ष के सौदर्य को भी लोकोक्ति के आधार के द्वारा चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है—

'सावन आगम हेरि सखी ! मन भावन-आवन चोप बिसेखी ।
छाय कहूँ घन आनद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी ॥
बूँदे लगे सब अङ्ग दगा उलटी गति आपने तापनि पेखी ।
पौन ते जागति आगि सुनी ही पै पानी ते लागित आखिन देखी ॥

महाकवि घनानद की यह विशेषता है कि उनके काव्य मे कलापक्ष के उपकरणो को इस स्वाभाविक रूप से व्यवहृत किया है कि उनके द्वारा भाव-सौदर्य मे कोई कमी नहीं आती वरन् उसमे उत्कर्ष हो आता है। कहीं२ पर तो साङ्गरूपक का प्रयोग भी कवि भावातिरेक मे ही कर गया है इससे यह प्रतीत नहीं होता कि कवि ने अलङ्कार के लिये कुछ प्रयत्न किया है—

विरहा-रवि सो घट व्योम तच्यो,
बिजुरी सी खिवैं इकली छतियाँ ।
हिय सागर मे दृग मेघ भरे,
उघरे बरसे दिन औ रतियाँ ।
घन-आनँद जान अनोखी दसा,
न लखौ दई कैसे लिखौ पतियाँ ।
नित सावन दीठ सु बैठक मे
टपकै बरुनी तिहि ओलतिया ॥

इस प्रकार घनानद के पूर्ण काव्य पर यदि दृष्टि डाल कर फिर ठाकुर और बोधा के काव्य को आँका जाय तो प्रेम की व्यापकता मे ही नही वरन् प्रत्येक क्षेत्र मे वह उसी प्रकार प्रतीत होगा जैसे सूर के काव्य के सम्मुख अष्ट-छाप के अन्य कवि । घनानद के प्रेम की अनेको अवस्थाओ, विप्रलभ शृङ्गार की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओ, प्रकृति के अनेको प्रकारो तथा काव्य की प्रौढता को देखकर निस्सदेहात्मक रूप से उनको महाकवि का स्थान देना परमावश्यक है तथा बोधा और ठाकुर इस दृष्टि से उतने सफल कलाकार नहीं ।